वेद की सहायता से जीवन में सच्चे सुख की तलाश



आनंद की ओर

दीपक शर्मा

आनंद की ओर

दीपक शर्मा

“अगर मुझसे पूछा जाए कि अंतरिक्ष के नीचे कौन सी वह जगह है जहाँ इंसान ने भगवान के द्वारा बताई गयी शिक्षाओं को पूर्ण रूप से जाना है, गहराई में उतरकर जीवन की सबसे मुश्किल समस्याओं पर विचार किया है और उनमें से अनेकों को इस प्रकार सुलझाया है जिनको जानकर प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले फिलॉसफर भी आश्चर्यचकित होकर रह जाएँ तो मेरी उँगली भारत की ओर उठेगी।”

मैक्समूलर

“उपनिषद मेरे जीवन को शांति देते हैं...मुझे मरने के बाद भी शांति देंगे।”

शॉपेनहॉवर

“भगवद्गीता जैसा दुर्लभ और अनमोल उपदेश दूसरा कोई नहीं।”

एनी बेसेंट

CONTENTS

मेरी तारीफ

कुछ दिन पहले
अलमारी खोली सपनों की
जरा अटक रहा था दरवाजा
सपने जर्जर थे शायद
थोड़ा जोर लगाया जब
कुछ सपने टूट कर बिखर गए
नीचे के कोने में
एक आईना पड़ा था
धूल छांट रहा था वक्त की
जब साफ किया मैंने
तो सामने लड़कपन खड़ा था
चेहरे पर झुर्रियां नहीं थीं
आंखों के काले घेरे कहां गए
मेघ से काले केश
अरे ये तो मैं ही हूँ
पर फिर सपना टूटा
आईना बंद कर के सोचा
तड़के कबाड़ी को दे आऊंगा इसे

साइंस की एक स्टडी के अनुसार इस धरती पर कुल जीवों की संख्या करीब 10^30 है। एक अरब लगभग 10^9 के बराबर होता है। एक गज धरती में ही करोड़ों सूक्ष्म जीव या बैक्टीरिया वगैरह होते हैं। इसका मतलब है कि एक अरब को एक अरब से ही गुना किया जाए और फिर जो संख्या आएगी उसको फिर से एक अरब से गुना किया जाए, तब जो संख्या बनेगी करीब उतने जीव हमारी धरती पर मौजूद हैं। इतने जीवों की बाढ़ में मैं 5 फुट 9 इंच का एक जीव अपने होने का क्या ही अहंकार कर सकता हूँ। हममें से किसी के भी होने या न होने से इस संसार की मशीनरी पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हम यहाँ आये हैं, कुछ समय रहेंगे और फिर चलते बनेंगे। इसलिए बेहतर यह है कि मैं अपनी बात न करके उन घटनाओं के बारे में बात करूँ जिससे इस किताब को लिखने की नींव पड़ी।

पिछले साल दिवाली से पहले अपनी अलमारी की सफाई के दौरान मुझे कुछ किताबों के पीछे मुड़ी-तुड़ी पड़ी एक काली टोपी नजर आई। ऐसा लग रहा था जैसे अतीत की खिड़की में से वह टोपी उस शरारती बच्चे की तरह झाँक रही हो जो बाहर निकल कर खेलने के लिए बेकरार रहता है। बड़े हो जाने के बाद बचपन इसी तरह कभी-कभी सफाई के दौरान कोने में मुड़ा-तुड़ा पड़ा पाया जाता है। किसी पुराने जिगरी दोस्त की तरह वह टोपी भी शायद मुझे देख कर मुस्कुरा रही थी। मैंने उस टोपी को अलमारी से निकाला और देखते ही उसे पहचान गया। मुझे याद है मैं आठवीं क्लास में था जब स्कूल के वार्षिक महोत्सव में मुझे भाग लेने का मौका मिला था। मैं एक नाटक में आर. एस. एस. (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) के संस्थापक डा. केशव राव बलीराम हेडगेवार की एक्टिंग कर रहा था। टीचर ने मुझे नेताओं के जैसी एक काली टोपी दी थी जो मुझे नाटक में पहननी थी। यह वही काली टोपी थी जो मुझे अलमारी में मिल गयी। नाटक मंचन वाले दिन सुबह-सुबह ही मैं उस टोपी को पहन कर बैठ गया और अपने डायलॉग्स की प्रैक्टिस करने लगा। एक्टिंग का कोई ज्ञान न होते हुए भी एक मंझे हुए कलाकार की तरह इतराता हुआ मैं तैयार हो कर स्कूल की तरफ चल दिया। रास्ते में चलता हुआ मैं खुद को शायद डॉ. हेडगेवार ही सोच रहा था। मैं डॉ. हेडगेवार के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानता था, आज भी बहुत ज्यादा नहीं जानता हूँ लेकिन अपने डायलॉग्स को बस तोते की तरह रट कर मैंने एक अच्छे विद्यार्थी की तरह मंच पर सब बोल डाला। उस छोटी सी आयु में ज्यादा कुछ तो समझ नहीं आया था पर जैसा टीचर ने समझाया मैंने एक्टिंग कर दी। शायद मेरी मासूमियत के कारण ही सही, उस नाटक के लिए मुझे पुरस्कार दे दिया गया। यह बात अलग है कि एक आठवीं क्लास के बच्चे के लिए वह पुरस्कार थोड़ा अटपटा था। वह पुरस्कार था भगवद्गीता की एक छोटी सी किताब। भगवद्गीता का ज्ञान मेरे लिए कुछ इस तरह था जैसे लिटरेचर के स्टूडेंट के लिए फिजिक्स की कोई थ्योरी। पर मैं भी कम नहीं था, मुझे कहानियों की पुस्तकें पढ़ने का बहुत छोटी उम्र से बेहद शौक था। स्कूल की लाइब्रेरी से कहानियों, लोक कथाओं आदि की किताबें इश्यू करा के मैं उसी दिन शाम होते होते सारी कहानियां पढ़ डालता था। भगवद्गीता को भी मैं किसी कहानी की किताब की तरह बिना समझे बस पढ़ता चला गया। अब 12-13 साल की उम्र में मैं भगवद्गीता का ज्ञान क्या

समझता। सब मेरे सिर के ऊपर से निकल गया। पर एक बात ज़रूर अच्छी हुई । शायद भगवान ने अपनी नोटबुक में मेरे कर्मों के अकाउंट वाले पेज पर इस बात को नोट कर लिया। तभी शायद उन्होंने मेरे युवा होने पर मुझमें वास्तविक सच को जानने के प्रति जिज्ञासा जगा दी और शायद उस जिज्ञासा का ही परिणाम है कि मेरे अंदर इस किताब को लिखने की प्रेरणा जगी।

फिर पिछले तीन-चार सालों के दौरान मेरे अंदर ये जिज्ञासाएं भी बढ़ने लगीं कि हमें 60-70 साल की जो जिंदगी मिली हुई है, क्या वह बस एक संयोग भर है? क्या हम संयोग वश इस दुनिया में आ गए और फिर मर कर वातावरण का प्रदूषण बढांएगे या फिर इस सैल्युलॉयड परदे के पीछे फिल्म की रील चलाने वाला भी कोई है? फिर यह सवाल भी उठा कि जीवन में जो दुख और सुख का चक्कर चलता रहता है, उसका रहस्य क्या है और वह रहस्य हमें कौन समझा सकता है? दूसरा यह कि सुख और दुख की परिभाषा क्या है? अगर भूख लगी है और रसगुल्ला खाने को मिल जाए तो कहना ही क्या, क्या गजब का सुख है। लेकिन अगर पेट पूरा भरा हो और फिर रसगुल्ला दिया जाए तो यही सुख गायब हो जाता है। तो यह कैसा सुख है, यह तो भ्रम है। ऐसे ही अनगिनत सवालों से जब दिमाग की वायरिंग गड़बड़ाने लगी तो मैंने सबसे पहले भागवत पुराण में अपने सवालों के जवाब ढूंढे। फिर भगवद्गीता का रूख किया। इंटरनेट पर उपलब्ध उपनिषदों वगैरह के कंटेंट को समझने की कोशिश की। यूट्यूब पर भी कुछ समय बिताया । इस तरह धीरे-धीरे जीवन की सच्चाइयों के बारे में जो थोड़ा बहुत ज्ञान समझ आया उसे मैंने इस किताब में समेटने की कोशिश की है।

मैं कोई ज्ञानी महापुरुष नहीं हूँ, न ही मैं संत की उपाधि से सुशोभित कोई महात्मा हूँ। मुझमें कमियां भी हैं और मैं गलतियां भी करता हूँ इसलिए जो बातें मैंने इस किताब में साझा की हैं वे सब मैं खुद पर भी अमल करने की कोशिश कर रहा हूँ। आप मुझे कोई सन्यांसी या ज्ञानी बाबा आदि न मानकर, किसी उपदेश की तरह नहीं, बल्कि खुले विचारों से इस किताब को पढ़ें। मैं खुद अभी सीखने के मार्ग पर हूँ, बहुत कुछ सीख रहा हूँ और बहुत सारी गलतियां भी कर रहा हूँ। पिछले 3-4 सालों में जीवन की कुछ गूढ़ सच्चाइयों को थोड़ा बेहतर ढंग से समझ पाया हूँ इसलिए उन्हें साझा करने की कोशिश कर रहा हूँ।

मुझे लेखन की कला भी नहीं आती। हिंदी रचनाकारों की तरह अलंकारों और विशेषणों का इस्तेमाल कर के किसी बात को संगीत की तरह पिरो कर सुनाना मुझे नहीं आता क्योंकि मैं कभी साहित्य का विद्यार्थी रहा ही नहीं हूँ। मैं इंजीनियरिंग का छात्र रहा हूँ। लेखन और साहित्य मेरे मुख्य विषय कभी रहे ही नहीं। मैंने इंजीनियरिंग की पढ़ाई की है और किसी बात को सीधा तथ्य के साथ रखना ही अपनी शिक्षा के दौरान सीखा है। इसलिए मैंने कुछ स्थानों पर उपनिषद, भगवद्गीता, भागवत पुराण, वेदांत आदि के श्लोकों का हवाला दिया है। हर चैप्टर से पहले मैंने कुछ पंक्तियाँ भी अपनी समझ के हिसाब से लिखी हैं। उन पंक्तियों में मैंने उस चर्चा विशेष के निचोड़ को समाहित करने की कोशिश की है। अगर आपको वो पंक्तियाँ उबाऊ लगें या इस किताब के बहाव को रोकती हुई सी लगें तो आप उनको नजरअंदाज कर बेझिझक आगे बढ़ सकते हैं। लेखन की जो थोड़ी बहुत समझ मुझे थी, उसके हिसाब से मैंने अपनी बातों को साझा करने की कोशिश की है।

इसलिए आप मुझे अपने एक साधारण दोस्त की तरह समझें और इस पुस्तक को पढ़ने के

दौरान जहाँ आप को मेरी कोई बात मूर्खतापूर्ण या बचकानी लगे, तो मेरी हिमाकत को नजरअंदाज कर दें।

सावधान, आगे ब्रेकर है

फूंक फूंक कर पग धरना तू
मार्ग बड़ा पथरीला है
काफ़िर के रथ के पहिए का
पेच ज़रा सा ढीला है
है बंदा जो रब का
बस वो ही आगे का मार्ग चले
असली सुख का प्यासा जो
चातक, वह वर्षापान करे
खड़ा विकारी दुर्योधन
रण में हर पल ललकार रहा
हो जाए महाभारत फिर
मिल जाए कृष्ण का साथ जरा

"सावधान, आगे ब्रेकर हैं" यह बोर्ड सड़क पर दिखते ही हम गाड़ी की स्पीड कम कर लेते हैं। इस किताब की यात्रा पर भी आगे बढ़ने से पहले थोड़ी ब्रेक लगा कर जरा आगे की सड़क का मुआयना कर लेते हैं। अगर आप को लगे कि रास्ता गड्ढों भरा है या आगे अँधेरा है तो आप गाड़ी (आपके सिद्धांत या तार्किक दर्शन) वापस मोड़ लेना। जिन लोगों को सड़क मुलायम लगे या दूर तक प्रकाश (आस्तिकता) नजर आये, वो अपनी गाड़ी बेझिझक आगे बढ़ाएं। इससे पहले कि मुआयना किया जाए, अपने बचपन की एक घटना की तरफ आप को ले चलता हूँ।

मुझे बचपन में घड़ी पहनने का बेहद शौक था। मैं रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे आंखें बंद कर के अपने बाएं हाथ में एक घड़ी के होने की कल्पना किया करता था। मुझे लगता था कि घड़ी पहन कर मैं जरा अधिक बुद्धिजीवी दिखता हूँ। मेरा मन किया करता था कि मैं स्कूल में घड़ी पहन कर जाऊँ। छठी कक्षा में मेरा यह शौक पूरा हुआ जब मेरे पिताजी ने एक सुंदर घड़ी मुझे ला कर दी। घड़ी पाकर मेरी खुशी का ठिकाना न था। जिस दिन उन्होंने मुझे वह घड़ी दी, उससे अगले ही दिन मैं उस घड़ी को पहन कर स्कूल में इतराता हुआ चला गया। मैं यह भूल ही गया कि मेरे स्कूल में आठवीं क्लास तक के विद्यार्थियों को घड़ी पहनने की अनुमति नहीं थी। मैं उस घड़ी को पहन कर सुबह की प्रार्थना सभा में बैठ गया। मुझे बड़े आनंद की अनुभूति हो रही थी कि तभी प्रार्थना के दौरान मेरी क्लास टीचर की नजर उस घड़ी पर पड़ गई और उन्होंने वह घड़ी मेरे हाथ से उतरवा ली। मेरी सारी ख़ुशी मायूसी में बदल गई। उस दिन मेरा मन न प्रार्थना में लगा और न ही क्लास में। घड़ी लेते समय टीचर ने मुझे आठवें पीरियड में आकर मिलने का कहा था। मैं दिन भर आठवें पीरियड का इंतज़ार करता रहा और आठवां पीरियड शुरू होते ही अपनी क्लास से निकलकर सीधा उन टीचर के पास पहुंच गया।

वह टीचर किसी अन्य क्लास में पढ़ा रही थीं। मैं पूरा पीरियड उस क्लास के बाहर इंतजार करता रहा और जैसे ही पीरियड समाप्त हुआ उनके पास पहुंच गया। पहले तो उन्होंने मुझे घड़ी देने से मना कर दिया। उनकी बात सुनकर मेरी आंखें भर आईं। एक तरफ घड़ी के खोने का दुःख और दूसरा पिताजी से डाँट पड़ने का डर। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मुझ से वह घड़ी छीन कर भाग रहा है। मेरे चेहरे पर मासूमियत और निराशा के भाव देखकर उन टीचर का दिल पसीज गया और उन्होंने मुझे स्कूल में घड़ी न पहन कर आने की चेतावनी देते हुए उसे वापस कर दिया। मेरी आंखों में चमक वापस आ गई और मैं टीचर को धन्यवाद करते हुए खुशी-खुशी वापस घर आ गया।

घड़ी के प्रति मेरा प्यार कुछ महीनों तक चला लेकिन फिर धीरे-धीरे मेरी नई प्रमिका घड़ी की बजाय एक साईकिल बन गई। सातवीं क्लास में मैं साईकिल के सपने देखने लगा। मैं गर्मियों की दोपहर में, जब घर के सारे सदस्य सो जाया करते थे, बरामदे में अकेला लेटा हुआ साईकिल के बारे में 'मुंगेरी लाल के हसीन सपने' देखता रहता। दरअसल छठीं क्लास में मुझे छात्रवृत्ति का पुरस्कार मिला था और तब से मैं अपने पिता को छात्रवृत्ति के पैसों से साइकिल दिलाने की जिद

करता आ रहा था। आखिरकार सितंबर के महीने में मुझे एक खूबसूरत साईकिल भी दिला दी गई। मेरा नया प्यार मुझे मिल गया था। मैं स्कूल से घर पहुंचते ही उस साईकिल को देखने कोने वाले कमरे में पहुंच जाता। शाम होते ही साइकिल पर चढ़कर बिना किसी काम के ही घूमने निकल जाता। वह साइकिल भी अक्सर मुझे कोसा करती होगी कि भाई जब कोई काम ही नहीं है तो मेरे फेफड़ों को क्यों थकवा रहे हो और मैं शायद उस बेरहम धोबी की तरह उसकी बात को नजरअंदाज कर देता था जो अपने महीने भर के कपड़े एक बेचारे गधे पर ढोये-ढोये फिरता हो। हालांकि साइकिल के प्रति यह प्यार भी एक-दो साल रहा और जैसे-जैसे मै बड़ा होता गया तो कभी बाइक, कभी मोबाइल फोन और कभी कार वगैरह के रूप में मेरी प्रमिकाएं बदलती गई।

पर बदलते समय और बदलती प्रेमिकाओं के बीच एक चीज स्थिर रही। वह स्थिरता थी कि उन सब महत्वाकांक्षाओं से मुझे कभी लंबे समय तक टिकने वाले आनंद की प्राप्ति नहीं हुई। मेरी जिस भी भौतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति होती, कुछ समय बाद वह महत्वाकांक्षा बदल जाती और मेरा आनंद जाता रहता। जिस प्रकार छोटे बच्चे का मन कुछ देर में ही एक खिलौने से भर जाता है और वह दूसरे खिलौने के प्रति आसक्त हो जाता है, उसी प्रकार मेरी आसक्ति भी बदलती रही पर जीवन में सच्चे सुख की अनुभूति नहीं हुई।

कॉलेज के बाद मैंने आई.टी. सेक्टर में नौकरी करना शुरू किया। जीवन में खुद का कमाया हुआ पैसा आना शुरू हुआ। जब शुरूआत में पैसा आया तो बड़े संतोष और सुख का अनुभव हुआ। फिर धीरे-धीरे पैसे से भी किसी खास सुख का आभास होना बंद हो गया। धीरे-धीरे समय का चक्र चलता रहा और जीवन का कारवां आगे बढ़ता रहा। परिवार बढ़ा, खुशियां और जिम्मेदारियाँ भी बढ़ीं। लगा कि जीवन सम्पूर्ण है और शायद इसी सब को सच्चा सुख कहते हैं। पर इससे पहले कि मैं सुख के गुलाब जामुन की मिठास को ठीक से पचा पाता, प्रारब्ध वश (किस्मत से) दुख रुपी बदहजमी ने धावा बोल दिया। बेचारे दुख शायद बड़े लम्बे समय से मेरे जीवन में प्रवेश पाने की बाट जोह रहे थे। वह परेशानियां और पीड़ाएं क्या थीं, इसका जिक्र कर मैं इस चर्चा को उबाऊ नहीं बनाना चाहता। खैर उन दुखों ने मुझसे काफी गहरी दोस्ती निभाई और समय के साथ इतिहास बन कर और मुझे अस्थायी विदा दे कर शायद किसी और सुख के नशे में चूर, नशेड़ी का आनंद भंग करने चले गए। वे दुख तो गुजर गए लेकिन एक अच्छे दोस्त की तरह मुझे जीवन के कुछ नए सबक सिखा गए। सुख और दुखों के उतार-चढ़ाव बढ़े चक्र को पार करते हुए मैं 33 वर्ष की आयु तक पहुंच चुका हूँ। यह उम्र बहुत अधिक अनुभवी तो नहीं कही जा सकती लेकिन सुख और दुखों से अपनी लड़ाइयों और दोस्ती के दौरान मैंने जीवन की जो महत्वपूर्ण शिक्षाएं प्राप्त की, उनमें सबसे बड़ी शिक्षा यह थी कि जीवन में कुछ भी स्थिर नहीं है। घड़ी और साईकिल की तरह किसी भी भौतिक वस्तु या व्यक्ति से सदा रहने वाला आनंद या सुख नहीं मिल सकता।

जब मैंने जीवन को कुछ और गहराई से जाना तो समझ आया कि सुख और दुख का चक्र प्रारब्ध वश चलता है और इससे मुक्ति संभव नहीं है। जीवन संघर्ष का ही पर्यायवाची शब्द है। परेशानियों से बचने का एकमात्र तरीका यह है कि व्यक्ति अपने अंतर्मन को इतना मजबूत और स्थिर बनाए कि सुख और दुख का प्रभाव उस पर पड़े ही नहीं। केवल यही तरीका व्यक्ति को वास्तविक उन्नति की ओर अग्रसर करता है। इस चक्रव्यूह को भेदने का कोई और तरीका इस विश्व में नहीं है। अपने अंतर्मन को मजबूत करके व्यक्ति को धैर्य के साथ बुरे वक्त के एक तूफान

की तरह गुजर जाने का इंतजार करना चाहिए। कुछ लोगों के अनुसार यह कोरा ज्ञान है लेकिन तरीका तो सिर्फ यही है। कठिन समय गुजरता तो जरूर है, लेकिन यह हम पर निर्भर करता है कि हम उस समय को मैच्योरिटी के साथ संयम बरतते हुए बिताते हैं या अपनी शारीरिक और मानसिक सेहत को खराब करके बिताते हैं।

संत रहीम कहते हैं -

रहिमन चुप हो बैठिए, देखि दिनन के फेर।

जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर॥

मतलब - जब बुरे दिन आए हों तो चुप ही बैठना चाहिए यानी धैर्यपूर्वक इंतजार करना चाहिए क्योंकि जब अच्छे दिन उगते हैं तब बात बनते देर नहीं लगती।

हालांकि मैं इस बात का पूरी तरह समर्थन करता हूँ कि हम सब का मन इतना अधिक मलिन (मैला) है कि उसको केवल दृढ़ निश्चय के द्वारा शुद्ध कर पाना लगभग असंभव है। यह मैल किसी कीचड़ से भी अधिक जिद्दी है। वेद, उपनिषद, पुराण वगैरह में इस मन को साफ करने के तरीके बताये गए हैं। हम आगे की चर्चाओं में उन्हें जानने की कोशिश करेंगे लेकिन उस यात्रा पर चलने से पहले एक गतिरोधक को जान लेना जरूरी है। इस किताब में अपनी चर्चाओं में मैंने आस्तिकता के सिद्धांत को काफी प्रबलता से प्रस्तुत किया है और कर्मकांड जैसी चीजों की थोड़ी बहुत आलोचना भी की है। इसलिए वे पाठक जो खुद को नास्तिक मानते हैं, या अपनी तर्क बुद्धि पर वेद, उपनिषद वगैरह के ज्ञान से ज्यादा भरोसा करते हैं या फिर वे लोग जो पूजा-पाठ या कर्मकांड के घोर समर्थक हैं, उनको मेरा बेहद विनम्र निवेदन है कि वे यहां से आगे की यात्रा न करें। अगर आप को इस पुस्तक को पढ़ते हुए कभी भी यह आभास हो कि आप मेरे विचारों से पूरी तरह असहमति रखते हैं और आपने इस किताब पर बेकार पैसा बर्बाद किया है तो आप कृपया दो लाइनों में मुझे लिख भेजिए। मैं खुशी-खुशी इस पुस्तक की कीमत की राशि आपको वापस लौटा दूंगा। मैं ईमेल आई डी इस चर्चा के आखिर में लिख रहा हूँ। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि वेद और आस्तिकता से असहमति रखने वाला व्यक्ति इससे आगे का सफर तय करे।

हालांकि अगर आप इस पुस्तक के जरिये अपने जीवन में छोटे से छोटा बदलाव भी ला पाएं तो भी मुझे ईमेल के जरिये जरूर बताइये। तो आईए, चलते हैं वास्तविक आनंद को जानने की यात्रा पर।

ईमेल आई डी - anand.ki.oar@gmail.com

चक्रव्यूह

है चक्रव्यूह यह बड़ा प्रबल
भीषण लगती रणभूमि सकल
सेना नायक आचार्य खड़े
द्वारों पर हैं महारथी बड़े
पांडव दल में चिंता गहरी
पहले पग पर जयद्रथ प्रहरी
अर्जुन भी रण में दूर बहुत
न दिखते वासुदेव अच्युत
अब कौन व्यूह को पार करे
हो कोई जतन कि हार टले
अभिमन्यु ने तब कहा तात
भेदूंगा व्यूह के द्वार सात
है नम्र निवेदन आज्ञा दो
अर्जुन सुत पर विश्वास करो
मृत्यु भय का आलिंगन कर
चढ़ चला वीरता के रथ पर
रण में भीषण संहार किया
हर द्वार को उसने पार किया
सातों योद्धा तब चले साथ

अभिमन्यु पर कर दिया घात
मिल कर धोखे से वार किया
सौभद्रि का संहार किया
नहीं होते ऐसे वीर सदा
मिलते हैं जग में यदा कदा
हुआ धन्य महाभारत का रण
धरती का कण कण करे नमन

एक बार नारदजी और भगवान कृष्ण में बातचीत हो रही थी। नारदजी ने पूछा- भगवन, आप मायाधिपति (माया के मालिक) कहलाते हैं। बताइए आखिर ये माया है क्या?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा - नारद, आज मैं तुम्हें माया के बारे में बताता हूँ। चलो महल से बाहर निकलकर थोड़ा टहल कर आते हैं।

श्रीकृष्ण और नारदजी महल से आगे चलने लगे। तभी भगवान ने नारदजी से कहा - मुनि नारद, मुझे बहुत तेज प्यास लगी है, क्या आप सामने वाले कुएं से जल भरकर ले आएंगे?

नारदजी ने कहा - अवश्य प्रभु। नारदजी जल लेने के लिए कुएं के पास गए। तभी उनकी नज़र वहां जल भर रही एक सुंदर महिला पर पड़ी। नारद उसके रूप को देखकर उस पर मोहित हो गए। जब वह महिला जल भरकर जाने लगी तब नारदजी भी उनके पीछे चल दिए।

वह महिला एक गांव में गई। नारदजी उसके पीछे-पीछे जाने लगे, तभी एक वृद्ध ने उन्हें रोका और पूछा - आप कौन हैं?

नारदजी ने कहा - मैं भगवान विष्णु का परम भक्त नारद हूँ।

नारदजी ने उस वृद्ध से पूछा - आप कौन हैं और वह स्त्री आपकी क्या लगती हैं?

वृद्ध ने कहा - मैं इस गांव का सरपंच हूँ और यह मेरी इकलौती बेटी है।

नारदजी ने कहा - क्या आप अपनी पुत्री का विवाह मुझसे करेंगे?

वृद्ध ने कहा - ठीक है, लेकिन मेरी एक शर्त है।

नारदजी ने पूछा - कौनसी शर्त?

वृद्ध ने कहा - मेरी लड़की से विवाह करने के बाद तुम्हें इसी गांव में रहना पड़ेगा।

नारदजी ने कहा - ठीक है।

नारदजी और उस महिला का विवाह हो गया और वह उसी गांव में रहने लगे। नारदजी खुशी से अपना जीवन बिताते हुए बहुत लंबे समय तक वहां रहे। उनके यहां एक पुत्र और फिर एक पुत्री का जन्म हुआ। नारदजी सोचने लगे कितना खुशहाल जीवन है।

एक दिन अचानक गांव में भयंकर बाढ़ आ गई। सारा गांव जलमग्न हो गया। नारदजी ने सोचा कि जान बचाने के लिए इस गांव से बाहर निकलना चाहिए। उन्होंने एक युक्ति निकाली। लकड़ी के तने के सहारे वह अपने पूरे परिवार के साथ पानी पर तैर कर गांव से बाहर निकलने की कोशिश करने लगे। अचानक उनकी पुत्री का हाथ छूट गया और वह बाढ़ के पानी में बह गई, उसे बचाने की कोशिश में उनका पुत्र भी बह गया। नारदजी संतान के खोने का विलाप कर ही रहे थे कि उनकी पत्नी भी पानी में बह गई।

नारदजी बहुत दुखी हो गए और फूट-फूट कर रोने लगे। कुछ समय बाद बाढ़ का पानी उतर गया और नारदजी की जान बच गई। एक दिन गांव के सरपंच ने उन्हें बुलाया और मुआवजे के लिए उनसे उनके हुए नुकसान के बारे में पूछने लगे। नारदजी ने बताया कि उनकी पत्नी और बच्चे बाढ़ में बह गए थे। तब इस पर सरपंच ने कहा कि फिर तो तुम्हें भी मरना पड़ेगा क्योंकि इस गांव में सता की प्रथा है यानी अगर पत्नी की मृत्यु हो जाए तो पति को भी प्राण त्यागने पड़ते हैं। यह सुनकर नारदजी के होश उड़ गए और वह "हे कृष्ण, बचाओ कृष्ण" चिल्लाने लगे।

तभी भगवान कृष्ण ने उन्हें जगाया - नारद उठो, तुम्हें मैंने कुएं से पानी लेने के लिए भेजा था ना, तुम नींद में नदी किनारे क्या बड़बड़ाने लगे? तब नारदजी को समझ आया कि सपने में भगवान ने उन्हें अपनी माया दिखाई थी।

नारदजी ने हाथ जोड़ कर कहा - प्रभु, मैं समझ गया क्या होती है माया।

नारदजी तो माया को समझ गए लेकिन कहीं हम और आप भी नारदजी तो नहीं बने फिर रहे हैं? जिस तरह हम नौकरी, पैसा, पत्नी, बच्चे, मकान, ई.एम.आई. वगैरह के चक्रव्यूह में फंसे हुए हैं, कहीं नारदजी के भूत ने तो हमें गिरफ्त में नहीं ले रखा? मुझे याद है साल 2016 में नोटबंदी के दौरान बैंकों के बाहर जितनी लंबी लाइनें लगी थीं और लोगों के मन में बैंक कर्मियों के प्रति जितना श्रद्धा भाव था, उतना तो कभी भारत के मंदिरों के बाहर भी नज़र नहीं आया। गुड़गांव में मेरे ऑफिस कैंपस की बैंक ब्रांच के सामने नोटबंदी के दौरान बाहर सड़क पर गन्ने के रस का ठेला लगाने वाले चंदन और नारियल पानी बेचने वाले रामनारायण की बिक्री तो कई गुना बढ़ गई थी। रामनारायण ने श्री राम और भगवान नारायण को मोदीजी को नोटबंदी का आइडिया देने के लिए बहुत धन्यवाद दिया होगा। उस दौरान लोगों की श्रद्धा देख कर तो यमराज महाराज ने भी सोचा होगा कि अगर इसकी दस प्रतिशत शरणागति भी इन लोगों ने भगवान के प्रति दिखाई होती तो कलियुग में मुझे इतना ज्यादा काम न करना पड़ता। बहरहाल मेरा मूल तर्क यह है कि हम सब भी नारदजी की तरह ईश्वर की दो शक्तियों - माया और काल (समय) के चक्रव्यूह में बुरी तरह फंसे हुए हैं।

दरअसल एक चक्रव्यूह लगभग पाँच हजार साल पहले महाभारत में रचा गया था। पांडवों और कौरवों के गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को बंदी बनाने के लिए उस चक्रव्यूह की रचना की थी। उस समय श्री कृष्ण और अर्जुन की अनुपस्थिति में केवल अभिमन्यु ही चक्रव्यूह को भेदने में सफल रहा था। बाकी सभी पांडव योद्धा चक्रव्यूह के पहले द्वार को ही नहीं भेद पाए थे। वहां उन सबको अकेले जयद्रथ ने रोक लिया था। कुछ ऐसा ही एक चक्रव्यूह आज के समय में भी जारी है।

युद्ध केवल रणभूमि पर तलवारों से नहीं लड़ा जाता। कुछ युद्ध भौतिक न होकर आंतरिक होते हैं। ऐसा ही युद्ध हम सब के भीतर हमारे विकारों के साथ हमेशा चलता रहता है। आइए, महाभारत के चक्रव्यूह और इस चक्रव्यूह की थोड़ी तुलना करते हैं।

उस चक्रव्यूह के रचयिता आचार्य द्रोण थे और इसका रचयिता समय है। वह समय जिसके प्रभाव में हम भौतिकतावादी दौड़ में बिना रुके या कुछ पल आराम किए दौड़े जा रहे हैं। हम शायद अपने आप से यह पूछना ही भूल गए कि जिन सुखों के साधनों के लिए हम लगातार, बिना थके भागे जा रहे हैं, उनसे जो खुशी मिली क्या वह स्थायी है? मेरे स्वर्गीय दादाजी ने मृत्यु के समय

मेरे पिता को अंत में एक बात कही थी जिसमें इस आपा-धापी की वेदना छिपी थी। उन्होंने कहा था - "सारा जीवन बेकार ही सर पर पोटली लादी"। प्राण त्यागते एक व्यक्ति के द्वारा बोला गया यह वाक्य हमें बहुत कुछ समझाने के लिए काफ़ी है। इसलिए सोचने की बात है कि कहीं हमें रुक कर समय के इस चक्रव्यूह को पहचानने की जरूरत तो नहीं है?

एक और बात यह है कि गुरु द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह में केवल अभिमन्यु प्रवेश कर पाया था, बाकी पांडव योद्धा नहीं। उन्हें जयद्रथ ने चक्रव्यूह के पहले ही द्वार पर रोक दिया था। जयद्रथ आज के समय में हमारे ही विकारों का एक व्यक्तित्व कहा जा सकता है जो हमें समय के चक्रव्यूह को भेदकर असली सुख की ओर बढ़ने से रोकता है। दरअसल जयद्रथ पांडवों का जीजा था, जिसने एक बार पांडवों की पत्नी द्रौपदी का अपहरण करने की कोशिश की थी लेकिन युधिष्ठिर ने उसे माफ कर जीवनदान दे दिया था। यही जयद्रथ बाद में चक्रव्यूह के दौरान पांडवों को रोकने में कामयाब रहा। इसी प्रकार जिस समय हमारे विकार जैसे कपट, लोभ, द्वेष, आसक्ति वगैरह शुरुआती स्तर पर थे, जैसे कि हमारे बचपन में, तब हमने भी उन्हें जीवनदान देकर धीरे-धीरे बढ़ने दिया और फिर बाद में यही विकार 'जयद्रथ' रूप में हमारे और वास्तविक आनंद के बीच में रुकावट बन जाते हैं।

एक तुलना और की जा सकती है। सभी पांडवों को रोकने के बावजूद जयद्रथ अभिमन्यु को इसलिए नहीं रोक पाया था क्योंकि अभिमन्यु को 'चक्रव्यूह भेदन' का ज्ञान था। इसी प्रकार वह इंसान जिसे अपने असली तत्व का ज्ञान हो, जो जीवन के संघर्षों में विचलित न होता हो, जो धैर्यवान हो और जो असली कीमती वस्तुओं (जैसे कि शुद्ध प्रेम, सरलता, उदारता) और भौतिक सुख की वस्तुओं के बीच भेद कर सकता हो, वह व्यक्ति ही विकार रूपी जयद्रथ पर पार पा सकता है।

बात यह है कि हम में से हर कोई, कभी न कभी, फुर्सत के समय में, जब पेट भरा हो, रोजमर्रा की किसी बड़ी परेशानी ने नहीं घेरा हो, बैंक में एक अच्छी रकम खर्च करने योग्य मौजूद हो और स्वास्थ्य भी अच्छा चल रहा हो तो दार्शनिक बनने की स्वतंत्रता पा लेता है। वह यह सोचने की कोशिश जरूर करता है कि यह जीवन क्या चीज़ है, संसार में इतना सुख-दुख क्यों है या फिर कुछ लोग यह भी सोचने की कोशिश करते हैं कि हमारे इस दुनिया में आने का वास्तविक उद्देश्य क्या है? कहीं हम संयोगवश भ्रूण से जीव में परिवर्तित हुए कुछ करोड़ कोशिकाओं का एक समूह भर तो नहीं?

अब कुछ ऐसे लोगों के बारे में सोचिए जो दो वक्त के खाने के लिए रोज एक दौड़ में लगे रहते हैं, जिनके पास ऐश्वर्य के कोई खास साधन नहीं हैं, जो किसी गंभीर बीमारी से पीड़ित हैं या जिनके पास खाली बैठकर दार्शनिक की तरह सोचने की आजादी नहीं है। क्या ऐसे लोग कभी फुर्सत में यह सोचते होंगे कि उनके जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? शायद नहीं। उनके लिए जीवन का उद्देश्य अपने लिए एक आरामदायक जीवन की व्यवस्था करना या किसी गंभीर रोग से खुद को बाहर निकालना होता है। उन लोगों के पास दार्शनिक बनकर जीवन की गूढ़ बातों के बारे में बात करने की न फुर्सत होती है, न लग्जरी।

थोड़ा और आगे बढ़ते हुए यही सब सवाल एक ऐसे इंसान से पूछिए जिसके जीवन में सिर्फ

कुछ गिनती के दिन बचे हैं और जो मृत्युशय्या (बिस्तर) पर लेटा हुआ सिर्फ मौत का इंतजार कर रहा हो। अगर आप उससे बात करेंगे तो उसके पास जवाबों से ज्यादा पछतावे और शिकायतें होंगी और वह यही शोक करेगा कि काश उसने जिंदगी को खुलकर, ज्यादा हंसकर, अपनी पसंदीदा जगहों पर घूम कर, परिवार के प्रति उतना आसक्त न होकर, जरूरतमंदों की दान आदि द्वारा सहायता कर और भगवान का कुछ ध्यान करके बिताया होता। अगर आप उस व्यक्ति को एक बड़ी धनराशि देकर या कोई ऊंचे पद का लालच देकर संतुष्ट करना चाहें तो क्या वह व्यक्ति संतुष्ट होगा? मेरा मानना है कभी नहीं।

इसका सीधा सा मतलब यह है कि जिन्दगी और उम्र की विभिन्न परिस्थितियों में जीवन से हमारी अपेक्षाएं बदलती रहती हैं। एक बच्चे को खिलौने में जो खुशी मिलती है वह एक किशोर को शायद नई साईकिल में, एक बेरोजगार को अच्छी नौकरी के ऑफर में, एक लोभी को ढेर सारे पैसे में और एक शराबी को मंहगी शराब में मिलती है। पर इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि ये सब लोग खुशी, सुख, आनंद को चाहते हैं और शायद हममें से हर एक व्यक्ति उसी सुख की चाहत में अपने जीवन के सब काम करने में व्यस्त रहता है।

तो शॉर्ट में कहें तो हमारे जीवन का मूल उद्देश्य है आनंद या सुख की प्राप्ति, जहां किसी दुख, डर या चिंता की कोई जगह न हो। अब अगला सवाल यह उठता है कि ऐसा सुख कहां मिलेगा और कैसे? आगे की चर्चाओं में हम इन्हीं सवालों के जवाब तलाशेंगे। पर उसके लिए पहले हमें नास्तिकता से आस्तिकता की तरफ आना पड़ेगा। आस्तिकता का असली मतलब खुद को परमात्मा का सनातन (कभी न खत्म होने वाला) अंश मानना है। आस्तिकता का मतलब है हमेशा यह बोध रखना कि परमात्मा हमारे हृदय में हमेशा स्थित रहते हैं और यह बात सिर्फ सोचने वाली नहीं है। वेद के अनुसार यह एक तथ्य है। भगवान हमारे भीतर रहकर हमारे हर विचार, हर कर्म का हिसाब रखते हैं और उस के अनुसार कर्मफल प्रदान करते हैं।

भगवद्गीता के अनुसार -

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(श्रीमद्भगवद्गीता 15.7)

मतलब - इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा मेरा ही सनातन अंश है।

खुद को परमात्मा का सनातन अंश आत्मा मानना, यही आस्तिकता का मूल सिद्धांत है। हम सब तब तक नास्तिक ही हैं, जब तक अपने अंदर परमात्मा के सूक्ष्म रूप में बैठे होने को नहीं मानते। अगर हमें सनातन सुख चाहिए तो आस्तिकता को तो अपनाना ही पड़ेगा।

लेकिन एक आम इंसान अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी और आजीविका में इतना व्यस्त रहता है कि वह पूर्ण आस्तिकता या पूर्ण नास्तिकता के धरातलों पर नहीं होता। वह तो कहीं बीच भंवर में फंसा होता है। उसके लिए इतनी सारी बड़ी-बड़ी विचारधाराओं में यह जानना बहुत मुश्किल हो जाता है कि कौन से मार्ग से असली खुशी मिल सकती है। हर इंसान अपनी-अपनी समझ के हिसाब से अलग-अलग ही मार्ग बताएगा। इसलिए भगवान ने कहा है कि ऐसी परिस्थिति में वेद

को सबसे ऊंची अथॉरिटी मानना चाहिए क्योंकि वेद को किसी इंसान ने नहीं लिखा है। संसार की रचना के समय वेद भगवान में से खुद ही प्रकट होता है।

बेशक मैं यह स्वीकार करता हूँ कि एक राह चलते इंसान को यदि हम वेद की शिक्षा समझाने बैठेंगे तो वह हमें ही पागल ठहरा देगा, हो सकता है थप्पड़ वगैरह भी जड़ दे। इसका कारण यह है कि जो वेद में लिखा है वह प्रत्यक्ष नहीं है। भगवान हमें डायरेक्ट नहीं दिखते। वेद के बताये तत्व हमें आँखों से नहीं दिखते। इसलिए वेद के बताए रास्ते पर चलना शुरू में सबसे मुश्किल है। पर धीरे-धीरे लगातार कोशिश करते रहने से इस अनंतकाल से चल रहे चक्रव्यूह को भेदना संभव है।

उम्मीद है आप अगला अभिमन्यु बनकर इस चक्रव्यूह को भेद डालेंगे।

हम किस तरफ जा रहे हैं

अंधी दौड़ लगी है
सब भाग रहे हैं
शीशे की इमारतों में
रातों को जाग रहे हैं
कुछ हसरतें बाकी हैं
कुछ पूरी हो गई
इंसान तो जाग गए
इंसानियत सो गई
संतोष महंगा है
इच्छाएं सस्ती हैं
धर्म सुनसान है
और माया की बस्ती हैं

अजब तरह से गुजारी है जिंदगी हमने
जहाँ में रह के न कार-ए-जहाँ को पहचाना

(वजीर आगा)

है अजीब शहर की जिंदगी न सफर रहा न कयाम है
कहीं कारोबार सी दोपहर कहीं बद-मिजाज सी शाम है

(बशीर बद्र)

वजीर आगा और बशीर बद्र, इन दोनों शायरों ने जिन्दगी की कशमकश को बड़ा ठीक पहचाना है। हम 60-70 साल इस दुनिया में बड़े हास्यास्पद तरीके से बिता कर चले जाते हैं। शवयात्रा में शव के पीछे पीछे चल रहे लोगों पर आप एक नजर डालेंगे तो सबकी गर्दनें झुकी हुई नजर आएँगी। पहली नजर में आप सोचेंगे कि शायद इन लोगों को उस इंसान के जाने का गहरा दुख है लेकिन आप गौर से देखेंगे तो उनकी गर्दनें शोक में नहीं बल्कि अपने-अपने फोन में घुसी हुई नजर आएँगी। अपने आस-पास के व्यक्ति को मरकर दूसरों के कन्धों पर जाते देख भी हम लोग यह सोचने की कोशिश नहीं करते कि क्या यही जीवन की सारी सच्चाई है या इसके अलावा भी कोई सच हैं जो हमें जानने की जरूरत है।

एक प्रसिद्द कहानी है। एक आदमी के घर रात को पनाह लेने के लिए एक मेहमान आया और रात को वहीं ठहर गया। रात को जब गपशप होने लगी तो उस मेहमान ने कहा कि तुम यहाँ क्या छोटी-मोटी खेतीबाड़ी में लगे रहते हो। मेरे देश में जमीन इतनी सस्ती है कि लगभग मुफ्त ही मिलती है। तुम अपनी जमीन बेच-बाचकर मेरे देश चले आओ। वहां तुम्हारी जमीन के बदले में हजारों एकड़ जमीन मिल जाएगी। वहां के लोग इतने सीधे सादे हैं कि करीब-करीब मुफ्त में ही जमीन दे देते हैं।

उस आदमी में वासना जाग गई। वह कुछ दिन बाद ही अपनी सारी जमीन बेच कर उसी देश में पहुँच गया। जब वहां पहुंचा तो उसे सच्चाई का अंदाजा हुआ। उसने पूछा कि मैं जमीन खरीदना चाहता हूँ। बेचने वाले ने कहा - जमीन खरीदने का तुम जितना पैसा लाये हो यहाँ रख दो। और जमीन पाने का यहाँ एक ही तरीका है। कल सुबह सूरज उगते ही तुम निकल पड़ना और साँझ को सूरज डूबने तक जितनी जमीन तुम घेर सको घेर लेना। बस चलते जाना। शाम को सूरज डूबते-डूबते जहाँ से चले थे उसी जगह पर वापस लौटना होगा। बस यही शर्त है। जितनी जमीन तुम चल लोगे उतनी जमीन तुम्हारी हो जाएगी।

वह आदमी रात को सो न सका। हम में से भी कोई होता तो शायद सो न पाता। वासना कुछ ऐसी ही चीज होती है। यह उस पुरानी शराब की तरह होती है जिसको अगर शराबी अपना रिश्तेदार बना ले तो यह मौत तक ही साथ निभाती है। वह व्यक्ति रात भर योजनाएं बनाता रहा

कि कितनी जमीन घेर लूँ। सुबह का सूरज उगा। गाँव वाले भी इकट्ठा हो गए। वह आदमी भागने लगा। उसने अपने साथ रोटी, पानी का भी इंतजाम कर लिया था। रास्ते में भूख लगे, प्यास लगे तो सोचा था चलते-चलते ही खाना भी खा लूँगा, पानी भी पी लूँगा। उसने दौड़ना शुरू किया, क्योंकि चलने से तो आधी जमीन भी हासिल न कर पाता। भागते-भागते 12 बज गए। उसने सोचा था कि 12 बजे लौटना शुरू कर देगा, ताकि सूरज डूबते-डूबते वापस वहां पहुँच जाये जहाँ से शुरू किया था। यही तो शर्त थी। मगर वासना का अंत नहीं होता। उसने सोचा कि बारह बज गए अब लौटना चाहिए लेकिन फिर सोचा कि थोड़ी सी जमीन और घेर लूँ फिर लौटता हूँ। एक दिन थोड़ी ज्यादा मेहनत कर लेता हूँ। न उसने पानी पिया, न कुछ खाया और जमीन की भूख में बेतहाशा भागता रहा। रास्ते में खाना, पानी फेंक दिया, अपना कोट भी उतार दिया ताकि शरीर का वजन थोड़ा हल्का हो जाये। भागते-भागते 3 बज गए। अब उसे ख्याल आया कि वापस लौटा जाये मगर वक्त बहुत कम बचा था। तो उसने और तेज भागना शुरू किया, सारी ताकत लगा दी। शाम होने लगी और सूरज विदा लेने लगा। लेकिन मंजिल अभी दूर थी तो वह आदमी भागता रहा। उसने समय रहते वापस पहुँचने के लिए आखिरी दम लगा दिया। सूरज डूबते-डूबते वह आदमी जा कर धरती पर गिर पड़ा। शायद दिल का दौरा पड़ गया था। उधर सूरज डूबा, इधर वह आदमी मर गया। गाँव के सारे लोग जिनको वह सीधा सादा समझाता था, हँसने लगे और एक-दूसरे से बात करने लगे। यह कोई नई घटना न थी, अक्सर लोग आ जाते थे खबरें सुनकर, और इसी तरह मरते थे। यह कोई अपवाद नहीं था, यही नियम था। अब तक ऐसा एक भी आदमी नहीं आया था, जो घेरकर जमीन का मालिक बन पाया हो।

हम सब की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। सब भाग रहे हैं, बेतहाशा, बिना रुके। किसी से रोक कर पूछो कि भाई जा कहाँ रहे हो तो उसके पास तुम्हारी बात सुनने तक का समय नहीं होगा, बताना तो दूर की बात है। और इससे मैं और आप भी शायद अछूते नहीं हैं। जैसे-जैसे थोड़ा पैसा हमारी जिन्दगी में आता है, हम खुद ही अपनी ख्वाहिशों को और बढ़ा लेते हैं। चील को जब ऊंची उड़ान भरनी होती है तो वह अपने पंखों को और लंबा फैला लेती है। इसी तरह हम भी अपनी हसरतों के पंखों को और फैला लेते हैं।

पर हम जा कहाँ रहे हैं? यह दौड़ आखिर रुकेगी कहाँ? क्या हम भी उस आदमी की तरह भागते-भागते ही दम तोड़ देंगे? अगर ऑफिस के दोस्त के पास बड़ी गाड़ी है तो क्या जरूरी है कि हमारे पास भी बड़ी गाड़ी ही हो? यही अगर, भगवान न करे, (इस उदाहरण के लिए मुझे माफ कीजिए) उसके बच्चे को कैंसर हो जाये तो क्या आप यही ख्वाहिश रखेंगे कि आप के बच्चे को भी कैंसर हो? जब परेशानियों में कोई मुकाबला नहीं हो सकता तो सिर्फ महत्वकांक्षाओं में ही क्यों? हर व्यक्ति इस धरती पर अपने कर्म संस्कार और प्रारब्ध (किस्मत) ले कर आता है और उसे अपना जीवन उन्हीं के अनुसार जीना है। तो जब सबकी जिन्दगी की दिशा अलग रहने वाली है तो कुछ भौतिक सामान इकट्ठा कर के क्या हम सही में सामने वाले व्यक्ति के जीवन और जीवनशैली को दोहरा सकते हैं?

संयम और संतोष के बिना जीवन एक अंधी दौड़ ही बना रह जायेगा। भगवान ने इस पूरी धरती पर ढेरों क्विंटल ऑक्सीजन उपलब्ध करा रखी है। तो क्या आप सारी ऑक्सीजन खुद के ही फेफड़ों में भरने की कोशिश करते हैं? आप के शरीर को जितनी ऑक्सीजन चाहिए आप उतनी

ही प्रकृति से लेते हैं। आप 4 की बजाय 8 रोटी खा कर अगले दिन की भूख नहीं मिटा सकते। ईश्वर ने प्रकृति को संतुलन के आधार पर बनाया है। अगर व्यक्ति इसको हवस के जरिये उपभोग में लाने की कोशिश करे तो स्वयं ही अपना विनाश कर बैठता है। इसलिए जिन्दगी में कुछ पल रुककर सुबह की हवा, शाम की चहलकदमी, दोस्तों की गपशप, समंदर किनारे खड़े होकर आजादी का लुत्फ उठती लहरों को देखना, खुलकर हंसने जैसी चीजों को नजदीक से महसूस करने का भी समय निकालना चाहिए।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं -

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।

न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 6.17)

मतलब - जो व्यक्ति खाने, सोने, आमोद-प्रमोद (मनोरंजन) तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वही सारे भौतिक कलेशों को नष्ट कर सकता है।

जिन्दगी का उद्देश्य सिर्फ उपभोक्ता बन कर जीना नहीं है। व्यक्तिगत तौर पर मेरा मानना है कि हम इतनी छोटी आशाओं को पूरा करने तो इस धरती पर नहीं आये हैं। भगवान ने जरूर हमें इससे कुछ बड़ा करने के लिए इस दुनिया में भेजा होगा। वरना जो सारे काम हम लोग करते हैं, वह सब करने के लिए दुनिया में पहले से ही लाखों जानवर वगैरह हैं।

एक व्यक्ति ने एक महान ऋषि से पूछा - "मैं यह जानना चाहता हूँ कि हमेशा खुश रहने का राज क्या है?" ऋषि ने उससे कहा कि तुम मेरे साथ जंगल में चलो, मैं तुम्हे खुश रहने का राज बताता हूँ।

ऐसा कहकर ऋषि और वह व्यक्ति जंगल की तरफ चलने लगे। रास्ते में ऋषि ने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और उस व्यक्ति को कहा कि इसे पकड़ो और चलो। उस व्यक्ति ने पत्थर को उठाया और वह ऋषि के साथ साथ जंगल की तरफ चलने लगा।

कुछ समय बाद उस व्यक्ति के हाथ में दर्द होने लगा लेकिन वह चुप रहा और चलता रहा। लेकिन जब चलते हुए बहुत समय बीत गया और उस व्यक्ति से दर्द सहा नहीं गया तो उसने ऋषि से कहा कि उसे दर्द हो रहा है। इस पर ऋषि ने कहा कि इस पत्थर को नीचे रख दो। पत्थर को नीचे रखने पर उस व्यक्ति को बड़ी राहत महसूस हुई।

तभी ऋषि ने कहा- "यही है खुश रहने का राज।"

व्यक्ति ने कहा - "मैं कुछ समझा नहीं।"

ऋषि ने कहा - "जिस तरह इस पत्थर को एक मिनट तक हाथ में रखने पर थोडा सा दर्द होता है और अगर इसे एक घंटे तक हाथ में रखें तो थोडा ज्यादा दर्द होता है और अगर इसे और ज्यादा समय तक उठाये रखेंगे तो दर्द बढ़ता जायेगा, उसी तरह महत्वाकांक्षाओं के बोझ को जितने ज्यादा समय तक उठाये रखेंगे उतने ही ज्यादा हम दुखी और निराश रहेंगे। यह हम पर निर्भर करता है कि हम ख्वाहिशों और उनके पूरा न होने पर उपजे दुख के बोझ को एक मिनट

तक उठाये रखते है या जिंदगी भर। अगर हम खुश रहना चाहते हैं तो बेहतर है कि दुख रुपी पत्थर को जल्दी से जल्दी नीचे रखना सीख लिया जाये और हो सके तो उसे उठाया ही न जाये।"

सब माया है

सब माया है
ये माया क्या है
कहाँ रहती है
क्या फर्क पड़ता है
गर मिल भी गई
तो क्या कर लोगे
सुधरना तो है नहीं
कुत्ता बिल्ली बनकर
चैरासी लाख में घूमना है
चश्मे पर जो धूल है
वो वैराग से साफ होगी
है तुम्हारे पास?

एक शराबी व्यक्ति शराब के 3-4 पैग पीने के बाद बड़ा दार्शनिक सा हो जाता है, लगता है जैसे वह शॉपेनहॉवर या मैक्समूलर का रिश्तेदार हो। भारत में शराब पीने के बाद सबसे ज्यादा बोला जाने वाला डायलॉग है - "सब मोह माया है यार"। मैं अक्सर परेशान और विचलित हो जाता हूँ और अंदर ही अंदर खुद से व्यंग्य (मजाक) करता हूँ कि वाकई शराब के रस में किसी वेद के ज्ञानी ने शायद श्वेताश्वतर उपनिषद, भगवद्गीता और वेदांत जैसे दर्शन शास्त्रों का निचोड़ मिला दिया होगा, तभी वह शराबी इतनी गूढ़ बात इतनी सरलता से कह जाता है। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि वेद में यह बात प्रमुखता से कही गई है कि यह सारा संसार ईश्वर की उस प्रकृति के अधीन काम करता है जिसे माया शक्ति कहा जाता है।

मशहूर कवि हरिवंशराय बच्चन की कविता "मधुशाला" के अनुसार -

मुसलमान औ हिन्दू हैं दो, एक मगर, उनका प्याला,

एक मगर, उनका मदिरालय, एक मगर, उनकी हाला,

दोनों रहते एक, न जब तक मस्जिद मन्दिर में जाते,

बैर बढ़ाते मस्जिद मन्दिर, मेल कराती मधुशाला॥

व्यंगात्मक होकर मैं यह जरूर सोचने पर मजबूर हो जाता हूँ कि एक शराबी दूसरे शराबी से किस प्रकार बड़ी जल्दी घुल मिल जाता है। उनके बीच में जाति, धर्म, पैसे या रहन-सहन का कोई भेद नहीं रह जाता। थोड़ी देर में ही वे जिगरी दोस्त या भाई बन जाते हैं और एक शराबी का बिल दूसरा चुका देता है। उस वक्त उनके अंदर लालच, गुस्सा, कपट आदि की कोई भावना नहीं रहती। जो काम संतों के इतने उपदेश नहीं करा पाते वो कुछ मिलीलीटर शराब करा देती है। शराब में एक अवगुण न रहा होता तो अब तक इसको शायद पांचवे वेद या मदिरा उपनिषद की संज्ञा दी जा चुकी होती। वह अवगुण है कि यह दिल, लिवर, किडनी, श्वास की नली, पेट जैसे सभी जरूरी अंगों को तबाह कर देती है। यह खून को दूषित कर देती है। यह विवेक शक्ति को नष्ट कर देती है और इसे पांच महापापों में गिना जाता है। इसलिए सब मोह माया तो है लेकिन शराब से इसका निवारण नहीं, बल्कि वेद के बताये रास्तों से है।

महाभारत के वन पर्व में यक्ष और युधिष्ठिर के बीच संवाद का एक प्रसंग आता है। एक बार जब पाँचों पांडव भ्रमण कर रहे थे तो उन्हें प्यास सताने लगी। युधिष्ठिर ने नकुल को आज्ञा दी - "हे नकुल, तुम जल ढूँढकर ले आओ।"

नकुल जल की तलाश में एक तालाब के पास चले आये, लेकिन जैसे ही जल लेने के लिए आगे बढ़े, तालाब के किनारे एक यक्ष बोला - "हे नकुल, अगर तुम मेरे सवालों के जवाब दिये बिना इस तालाब का पानी पियोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।"

नकुल ने यक्ष की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया और तालाब से जल लेकर पी लिया। जल

पीते ही वे भूमि पर गिर पड़े।

नकुल के आने में देर होती देख युधिष्ठिर ने बारी-बारी तीनों भाईयों - सहदेव, अर्जुन और भीम को भेजा और उन सभी का भी नकुल जैसा ही हाल हुआ।

आखिरकार युधिष्ठिर खुद तालाब के पास पहुँचे। उन्होंने देखा कि वहाँ पर उनके सभी भाई बेहोश पड़े हुए हैं। वे अभी इस दृश्य को देखकर हैरान ही थे कि उन्हें यक्ष की आवाज सुनाई दी - "हे युधिष्ठिर, मैं एक यक्ष हूँ। मैंने तुम्हारे भाइयों से कहा था कि मेरे सवालों का जवाब देने के बाद ही तालाब से पानी लेना, लेकिन वे नहीं माने और उनका यह परिणाम हुआ। अब तुम भी अगर मेरे सवालों का जवाब दिये बिना जल ग्रहण करने की कोशिश करोगे तो तुम्हारा भी यही हाल होगा।"

यक्ष की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले - "हे यक्ष, मैं आपके अधिकार की वस्तु को बिल्कुल नहीं लेना चाहता। आप अब अपना सवाल पूछिये।"

इस पर यक्ष ने धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा -

को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्तिका।

ममैतांश्चतुरः प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब॥

इस श्लोक में एक सवाल ध्यान देने लायक है। वह है - "इस संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?"

युधिष्ठिर ने यक्ष को इस सवाल का बड़ा अच्छा उत्तर दिया। उन्होंने कहा - "यहां इस लोक से अनेक लोग रोजाना यमलोक को प्रस्थान करते हैं, यानी एक-एक कर सभी की मृत्यु देखी जाती है। फिर भी जो यहां बचे रह जाते हैं वे सदा के लिए यहीं टिके रहने की आशा करते हैं। इससे बड़ा आश्चर्य भला क्या हो सकता है? तात्पर्य यह है कि जिसका भी जन्म हुआ है उसकी मृत्यु होनी ही है और मृत्यु के साथ उस भेंट के लिए सभी को तैयार रहना चाहिए। लेकिन हर व्यक्ति इस प्रकार जीवन-व्यापार में खोया रहता है जैसे कि उसे मौत अपना ग्रास नहीं बनाएगी।"

इस आश्चर्य का सबसे बड़ा कारण है भगवान के द्वारा रची गई माया। वेद के अनुसार तीन तत्व ही इस संसार में हैं, चैथा कोई तत्व होता ही नहीं। श्वेताश्वतर उपनिषद में बताया गया है कि ये तीन तत्व हैं - भगवान या ब्रह्म, जीव यानी हम और माया। भगवान वह तत्व है जो संसार की रचना करता है। माया भगवान की वह शक्ति है जो भगवान संसार की रचना के साथ ही रचते हैं। यह वह शक्ति है जिससे व्यक्ति अपने वास्तविक तत्व को भूल जाता है। वह अपनी असली पहचान को भूल कर इस संसार में ही अपने को बंधा हुआ महसूस करता है और इसी में सुख और खुशी को ढूंढने की कोशिश करता है।

माया दो प्रकार की होती है -

1. जीव माया या अपरा या अविद्या माया

2. प्रकृति माया या विद्या माया

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण बताते हैं-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.4)

मतलब - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश - ये पञ्चमहाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार यह आठ प्रकार के भेदों वाली मेरी अपरा प्रकृति (माया) है।

हमारा मन और बुद्धि माया के अंतर्गत ही आते हैं इसलिए हमारी सोच, हमारे निर्णय, हमारे विचार और रूचि सब माया से प्रभावित रहते हैं।

दूसरी माया प्रकृति माया है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.14)

मतलब - मेरी यह गुणमयी दैवी माया बड़ी दुरत्यय है यानी इससे पार पाना बड़ा कठिन है। जो केवल मेरे ही शरण होते हैं वे इस माया को तर जाते हैं।

प्रकृति माया भगवान की वह शक्ति है जिसके अधीन यह सारा संसार रहता है। उसी माया के प्रभाव में बेबस हम लोग लालच, कपट, आसक्ति (मोह, ममता वगैरह), द्वेष, क्रोध (गुस्सा), अहंकार जैसे उन बंधनों में फंसे रहते हैं जो हमें स्थूलता के स्तर से आध्यात्मिकता के स्तर तक पहुँचने ही नहीं देते। किसी व्यक्ति को ड्रग्स या शराब की भारी लत लग जाए तो उसको यह पता होने के बावजूद कि यह उसके सारे शरीर को तबाह कर देगा, वह उसको छोड़ता नहीं है। उस लत का उस आदमी की बुद्धि, उसके विवेक और निर्णय लेने की क्षमता पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। ठीक इसी प्रकार माया के ये सब बच्चे - लालच, कपट, गुस्सा, हिंसा, अहंकार आदि के गिरफ्त में हमारा ज्ञान विवेक इस तरह जकड़ा रहता है जैसे विशाल अजगर की कुंडली में एक हिरन का बच्चा। हिरन का बच्चा निकलने के लिए जोर लगाता है तो अजगर उसे और जोर से जकड़ लेता है। वैसी ही अगर व्यक्ति माया से बचने की थोड़ी बहुत कोशिश करती है तो यह माया और तेजी से उसको जकड़ कर अपने पाश में फंसाये रखती है।

रामकृष्ण परमहंस एक ज्ञानी संत थे। एक दिन उन्होंने भगवान से माया को देखने की इच्छा जाहिर की। उन्हें माया का कुछ ऐसा दर्शन हुआ जिसको उन्होंने इस प्रकार बताया है -

‘‘एक छोटा सा बिंदु धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक बालिका के रूप में बदल गया। बालिका और बड़ी हुई और उसके गर्भ हुआ, फिर उसने एक बच्चे को जन्म दिया और साथ ही साथ उसे निगल गई। इस प्रकार उसके गर्भ से अनेक बच्चे जन्मते गये और वह सबको निगलती गई। तब मेरी समझ में आया कि यही माया है।’’ मतलब जो अभी है और दूसरे पल नहीं वही माया है। वह अनादि है मतलब जब से भगवान और हमारा अस्तित्व है तब से माया हमारे ऊपर हावी है। माया से ही इस प्रकृति की उत्पत्ति होती है।

हम कौन हैं, कहाँ से आये

हम कौन हैं
कहां से आए
तुम इस मिट्टी से बने हो
मिट्टी से?
धूल से तो नफरत है मुझे
छींक आती है
आदत डाल लो
मरने के बाद
मिट्टी में ही मिल जाना है

"जिन्दगी भर तो हुई गुफ्तगू गैरों से मगर,
आज तक हमसे न हमारी मुलाकात हुई।"

महाकवि गोपालदास नीरज की ये पंक्तियाँ हमारी इस चर्चा को शुरू करने के लिए एकदम ठीक बैठती हैं। हमने जिंदगी की आपाधापी का जो जिक्र पिछली चर्चाओं में किया, उस आपाधापी का कारण ही यही है कि हम सब मूर्ख खुद की असलियत जानते ही नहीं हैं। मकान, गाड़ी, रोटी, बच्चों की शिक्षा, पत्नी की महत्वाकांक्षाओं आदि में उलझा एक बेचारा सा आम आदमी उस भ्रमजाल से मौत होने तक बाहर ही नहीं निकल पाता, जो कहीं न कहीं उसी का बुना हुआ है। मैं गृहस्थ का कतई विरोधी नहीं, मैं खुद एक गृहस्थ जीवन जी रहा हूँ, लेकिन गृहस्थ जीवन में रहने के ये मायने नहीं कि हम अपनी आंतरिक उन्नति के लिए मेहनत ही न करें और दो पैरों वाले पशु बने हुए जीवन गुजार कर चले जाएं। खाने का इंतजाम, नींद, सम्भोग वगैरह तो जानवर भी करते हैं लेकिन उनमें और हम मनुष्यों में बस एक फर्क बुद्धि और विवेक का है। हमने उस विवेक को अपना हथियार नहीं बनाया तो जीवन बेकार चला जायेगा। हालांकि जब मैं अपनी आंतरिक उन्नति की बात करता हूँ तो पहले हमें जरा रुक कर यह जान लेना बेहद जरूरी है कि हमारी पहचान क्या है? हम हैं कौन?

आप कहेंगे कि यह क्या मजाक है। हर व्यक्ति अपनी पहचान जानता है। वह जानता है कि उसका क्या नाम है, वह कहां पढ़ता है या नौकरी करता है। वह यह भी बोध रखता है कि वह एक पति, बेटा, पिता, दोस्त वगैरह भी है। इस संसार में हर व्यक्ति एक नाम से जाना जाता है और उसी को अपनी पहचान मानता है। अगर सामूहिक रूप से भी बात की जाए तो यही जवाब मिलेगा कि हम सब इंसान हैं। मैं भी इन सभी जवाबों को वैध मानता हूँ लेकिन सिर्फ तब तक जब तक मैं अपनी आगे की बात नहीं रखता।

वेद के सिद्धांतों और हमारी आम धारणा के बीच में एक बहुत बड़ा भेद है। वह भेद है कि हम अपने आप को एक शरीर, एक देह मानते हैं जबकि शरीर सिर्फ एक ऐसी मशीन है जो विभिन्न स्थूल अंगों और कुछ रासायनिक क्रियाओं के द्वारा चालायमान है। वेद बताता है कि यह शरीर तो हमारी पहचान का सिर्फ सबसे बाहरी आवरण या परत है। पंच महाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश, वायु) से बने इस शरीर के अंदर एक बहुत ही सूक्ष्म तत्व है जो हमारी असली पहचान है। उसे आत्मा या जीवात्मा नाम से जाना जाता है। वह आत्मा ही है जिससे यह शरीर चेतना पाता है और मृत्यु के समय यही आत्मा शरीर को त्याग कर चली जाती है जिस कारण सारी इंद्रियां रहते हुए भी हमारा शरीर बेजान हो जाता है।

भगवद्गीता के अनुसार -

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा, न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.22)

मतलब - जैसे संसार में मनुष्य पुराने और जीर्ण हो चुके कपड़ों को त्याग कर अन्य नए कपड़ों को धारण करते हैं, वैसे ही जीवात्मा जीर्ण शरीर को छोड़कर नए शरीर को धारण करता है।

वेद में आत्मा का आकार कुछ इस प्रकार बताया गया है-

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।

(श्वेताश्वतर उपनिषद 5.9)

मतलब - अगर बाल के आगे की नोक को एक सौ भागों में विभाजित किया जाए और फिर इनमें से हर एक भाग को सौ भागों में विभाजित किया जाए तो इस तरह के हर भाग की माप आत्मा का परिमाप है यानी नोक के दस हजारवें हिस्से के बराबर आत्मा का माप होता है।

भगवद्गीता के एक और श्लोक में आत्मा के अविनाशी (कभी न खत्म होने वाली) होने की बात कही गई है -

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.24)

मतलब - यह आत्मा अखंडित (जिसके टुकड़े न हो सकें) तथा अघुलनशील (जो किसी में घुल न सके) है। इसे न तो जलाया जा सकता है, न ही सुखाया जा सकता है। यह शाश्वत (हमेशा रहने वाला), अविकारी और हमेशा एक सा रहने वाला है।

चूंकि आत्मा शाश्वत है इसलिए इसका कोई जन्म और शुरुआत भी नहीं है। भगवान की तरह आत्मा भी अनादि है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में बताया गया है कि दो पक्षी सुंदर पंखों वाले, साथ-साथ जुड़े हुए, एक दूसरे के दोस्त हैं। एक वृक्ष को वे सब ओर से घेरे हुए हैं। उनमें से एक, वृक्ष के फल को बड़े स्वाद से चख रहा है, दूसरा बिना चखे, सब कुछ साक्षी भाव से (गवाह की तरह) सिर्फ देख रहा है। जीवात्मा और परमात्मा ही ये दो पक्षी हैं, हमारा शरीर वह पेड़ है जिसमें वे दो पक्षी रहते हैं, कर्मफल इस वृक्ष का फल है, जीवात्मा को कर्मफल मिलता है, परमात्मा साक्षी भाव से जीव और प्रकृति को देख रहा है यानी द्दष्टा मात्र है।

वेद के अनुसार हमारे हृदय में आत्मा और परमात्मा दोनों रहते हैं। हर जीव के भीतर, चाहे वह इंसान हो, कोई जानवर, पक्षी या कीट-पतंगा, सूक्ष्म रूप में खुद करोड़ों ब्रह्मांडों के स्वामी, सर्वशक्तिमान ईश्वर रहते हैं। वेद आगे बताता है कि भगवान और हमारे अस्तित्व की कभी शुरुआत हुई ही नहीं थी, मतलब यह समय की सीमाओं से परे है। हमेशा से हम अस्तित्व में हैं और हमेशा से ही भगवान अस्तित्व में हैं। फर्क यह है कि भगवान माया शक्ति के अधीन नहीं हैं जबकि हम सब हैं।

कठोपनिषद में एक कहानी आती है जिसमें आत्मा के स्वरूप को डिटेल में बताया गया है। कहानी के अनुसार उद्दालक ऋषि यज्ञ करके अपना सारा पैसा और गायें दान कर रहे थे। उद्दालक के बेटे नचिकेता ने जब देखा कि जो गायें उनके पिता दान में दे रहे थे वे काफी बूढ़ी और बीमार थीं तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने अपने पिता से कहा कि ‘‘इस प्रकार की गायों को दान करना दूसरों पर भार लादना है। इससे तो पाप ही लगेगा। इससे तो अच्छा था कि आप मुझे ही दान कर देते।‘‘

नचिकेता के बार-बार ऐसा कहने पर पिता ने गुस्से में कह दिया -‘‘जा, मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।‘‘

पिता की आज्ञा मानकर नचिकेता यमलोक जा पहुंचा। तीन दिन तक वह यमराज से मिलने के लिए वहीं पड़ा रहा। यमराज ने जब उससे वरदान मांगने को कहा तो नचिकेता ने कहा कि आप मुझे मृत्यु और आत्मा का रहस्य समझाइये।

इस पर यमराज ने उससे कहा -

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(कठोपनिषद 1.2.18)

जिसका मतलब है कि आत्मा न तो उत्पन्न (जन्म लेता) होता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है। यह आत्मा न तो किसी दूसरे के द्वारा जन्म लेता है न कोई इससे उत्पन्न होता है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य और शाश्वत है। शरीर के खत्म हो जाने पर भी यह खत्म नहीं होता। इसी जीवात्मा की हृदय रुपी गुफा में अणु (एटम) से भी छोटे और महान से भी अतिमहान परमात्मा विराजमान हैं। भगवान ने सभी इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, त्वचा आदि) का मुख बाहर की ओर किया हुआ है जिससे इंसान बाहरी चीजों को ही देखता है और संसार के छोटे-मोटे सुखों में ही उसका ध्यान रमा रहता है। वह अपने अंदर झांककर अंतरात्मा को नहीं देख पाता। इसे सिर्फ वही देख पाता है जो अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में कर सकता हो।

वेद में बताई गयी यह आत्मा टी.वी. पर हॉरर शो में दिखाई जाने वाली, सफेद साड़ी पहने और लंबे नाखूनों वाली किसी चुड़ैल जैसी नहीं है। आत्मा और भगवान के बारे में हमें भ्रमित करने का सबसे ज्यादा क्रेडिट किसी को जाता है तो वो इडियट बॉक्स पर आने वाले सीरियल ही हैं। आत्मा का कोई स्वरूप, कोई आकार या कोई चेहरा-मोहरा नहीं है। यह एटम से भी कहीं छोटा है। किसी भी माइक्रोस्कोप या दुनिया की किसी भी मशीन से न कोई व्यक्ति इसको देख पाया है न कभी देख पायेगा, क्योंकि भगवान ने यह सामर्थ्य इंसान को दिया ही नहीं है।

रूस में एक बार कुछ साईंटिस्टों ने एक प्रयोग किया। उन्होंने मरणासन्न (जिसकी मौत बस होने ही वाली हो) पड़े एक व्यक्ति को कांच के बॉक्स में बंद कर दिया। वे देखना चाहते थे कि मरने के बाद अगर कोई आत्मा शरीर से अलग होकर जाती है तो क्या इस कांच के बंद बक्से में से वह जा पायेगी? उनके देखते-देखते वह व्यक्ति मर गया और कांच के बक्से को कोई नुकसान नहीं हुआ, उसमें कोई दरार नहीं आयी। आत्मा बंद बक्से में से बाहर अपनी यात्रा पर जा चुकी थी

क्योंकि आत्मा शीशे के कण से भी सूक्ष्म थी।

मैंने न आत्मा को देखा है और न मैं आपको इसका स्वरूप दिखा सकता हूँ। इसलिए आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए आपको बस आस्तिकता के उसी सिद्धांत को पकड़े रहकर चलना होगा जिसका जिक्र मैंने इस किताब की शुरुआत में किया था। विश्वास की उस रस्सी को कस के पकड़े रखिये और इस पथरीले रास्ते पर आगे बढ़ते रहिये।

दुख और भ्रम

क्या खूब रचा तूने यह भ्रम
पृथ्वी वायु जल तेज गगन
माटी का उपजा खाते हैं
फिर खुद मिट्टी हो जाते हैं
जलजला कहीं पर बाढ़ प्रबल
खड़ा मूक मनुज घायल निर्बल
पैदा होता, मरता, जलता
निष्ठुर क्या तू परवाह करता
चहुं ओर तेरी माया फैली
बाहर सुंदर, भीतर मैली
खुद पावन बनता फिरता है
क्या फर्क तुझे कुछ पड़ता है
जब मिलेगा उस दिन बोलूंगा
कच्चा चिट्ठा तेरा खोलूंगा
माया का पर्दा हटा कभी
फिर देख पतित पावन मैं भी
उस दिन लोहा लूंगा तुझसे
आएगा जिस दिन चैखट पे

"मन का हो तो अच्छा, न हो तो ज्यादा अच्छा क्योंकि फिर वो ईश्वर के मन का होता है, और ईश्वर आप का हमेशा अच्छा चाहेगा।"

मशहूर अभिनेता अमिताभ बच्चन अपने फिल्मी करियर के शुरूआती दौर में काफी असफलता प्राप्त करने के बाद कुछ चिंतित और खिन्न होकर अपने पिता, प्रसिद्ध कवि श्री हरिवंशराय बच्चन के पास गए और जिन्दगी के प्रति अपना गुस्सा और रोष प्रकट किया। अमिताभ ने शिकायत की कि जीवन न्यायपूर्ण नहीं है। हम सब भी अक्सर ऐसा करते हैं जब बातचीत में सामान्य तौर पर कह देते हैं कि भगवान हमारे जीवन में अन्याय करते हैं। मुझे पूरी उम्मीद है आप ने भी कभी न कभी भगवान को लेकर शिकायतें और गुस्सा जाहिर किया होगा। अमिताभ के पिता ने शान्त मन से कहा कि मन का हो तो अच्छा, न हो तो ज्यादा अच्छा। अमिताभ उस समय इस बात की गहराई को समझ नहीं पाए और वहां से चले गए लेकिन बाद में जीवन के सिद्धांतों को जब उन्होंने और गहराई से जाना तो वह इस बात के महत्व को सदा के लिए समझ गए।

एक जादूगर जब जादू का खेल दिखाता है तो सफलतापूर्वक अपनी चाल को पूरा करने के लिए उसे दर्शकों का ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करना पड़ता है। जब दर्शक दूसरी तरफ ध्यान दे रहे होते हैं तो उनकी नजरों से हट कर वह अपनी चाल चल जाता है। वह ऐसा भ्रम पैदा करता है कि दर्शकों को वास्तविकता (सच्चाई) से दूर ले जाता है। ठीक ऐसा ही भगवान की माया शक्ति का जादू होता है। हमारी सारी इन्द्रियाँ बाहर की दुनिया देखने के लिए ही बनी हैं और उनमें वह शक्ति नहीं कि आंतरिक होकर शरीर के अंदर झांककर सूक्ष्म तत्वों को देख सके। इसलिए व्यक्ति को यह भ्रम रहता है कि बाहर वो जो कुछ देख रहा है वही सब सच्चाई है।

यह भ्रम ही हमारे दुखों का सबसे बड़ा कारण है। भ्रम के कारण ही हम अज्ञान में जीते हैं और उस अज्ञानता के कारण हम सुख और दुख की परिभाषा को अपने अनुसार बदल भी लेते हैं और सीमित भी कर लेते हैं।

हम सब अपने जन्म से ही इतने दुख भोग चुके होते हैं कि गिनने लगें तो मैथ्स भी फेल हो जाए। फिर भी हैरानी की बात है कि हम सबका मन उसी तरफ भागता है। सिर्फ जन्म लेने के दौरान और मरने के दौरान का ही दुख और पीड़ा इतने भयावह होते हैं कि व्यक्ति इतने कष्ट से तड़प उठता है। गरुड़ पुराण के अनुसार मौत के समय जब प्राण छूटते हैं तो एक व्यक्ति को इतना दर्द होता है जितना चालीस हजार बिच्छुओं के एक साथ काटने पर होता है। उसी तरह जन्म के समय बच्चा गर्भ में उल्टा लटका होता है और गर्भावस्था के दौरान माँ के गर्भ में घोर कष्ट सहन करता है । फिर भी भगवान की ही माया के प्रभाव से इन दुखों को भूला रहता है। जन्म के बाद बच्चा कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता। वह हर चीज के लिए माँ पर निर्भर रहता है। फिर थोड़ा बड़ा होने पर न चाहते हुए भी स्कूल में और फिर कॉलेज में 15-16 साल पढाई करनी पढ़ती है। फिर नौकरी के लिए व्यक्ति धक्के खाता है। परिवार बढ़ने पर कभी पत्नी से मतभेद हो सकते हैं,

कभी संतान आपके अनुकूल न होकर आपके विपरीत दिशा में चल सकती है, रोगों से जुड़े दुख भी टाइम-टाइम पर दस्तक देते रहते हैं। ऑफिस में या बिजनेस में अलग-अलग चिंताएं व्यक्ति को घेरे रहती हैं। इन सबके बावजूद जिस प्रकार व्यक्ति फिर भी इन सभी चीजों और व्यक्तियों आदि से ही सुख मिलने की आशा करता है वह अपने आप में एक भ्रम है। इस भौतिक संसार में सुख की उम्मीद करना ही भ्रम है। आप में से काफी लोग इस बात पर मुझसे असहमत हो सकते हैं। शायद आप यह तर्क रखेंगे कि संसार में इतने सारे लोग सुख प्राप्त कर रहे हैं, जिंदगी को एन्जॉय कर रहे हैं तो मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ। ऐसा मैं नहीं, बल्कि नीचे के दो श्लोकों में श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं -

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 8.15)

मतलब - मुझे प्राप्त करके महापुरूष, जो भक्तियोगी हैं, कभी भी 'दुखालय' (दुखों का घर) नामक इस अनित्य जगत (संसार) में नहीं लौटते।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 8.16)

मतलब - इस जगत में सर्वोच्च लोक से लेकर निम्नतम सारे लोक दुखों के घर हैं, जहां जन्म तथा मरण का चक्कर लगा रहता है।

कठोपनिषद भी कहता है -

पुरूषान्न परं किंचित्सा काष्ठा परमा गतिः

(कठोपनिषद 1.3.11)

मतलब- एक बार भगवान के धाम पहुंचकर फिर से भौतिक संसार में वापस नहीं आना होता।

श्रीकृष्ण बता रहे हैं कि यह संसार दुखों का घर है, मतलब यहां सुख की उम्मीद करना ही मूर्खता है, पागलपन है। हम बहुत से लोगों को सुख का अनुभव करते हुए तो देखते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि वे सब सुख क्षणिक हैं, कुछ समय रहने वाले हैं। जिस तरह अगर आग में घी डाल दिया जाये तो एक बार तो आग दब जाती है लेकिन फिर दुगुनी तेजी से ऊपर उठती है, उसी तरह जिन्दगी में कुछ समय के लिए सुख तो आते हैं लेकिन उसके बाद जीवन के कोने में दबे हुए इंतजार कर रहे दुख और तीव्रता से लौट आते हैं। सुख के दिन जाते रहते हैं जिसके बाद फिर से दुख रुपी खर-दूषण की सेना धावा बोल देती है। इसलिए सम्मान के लायक वही है जो सुख के भ्रमजाल में न उलझ कर मानसिक रूप से स्थिर रहता है।

गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं -

तुलसी साथी विपत्ति के, विद्या विनय विवेक।

सहस सुकृति सुसत्यव्रत, राम भरोसे एक॥

मतलब - विपत्ति में यानी मुश्किल वक्त में ये चीजें मनुष्य का साथ देती हैं - ज्ञान, विनम्रतापूर्वक व्यवहार, विवेक, साहस, अच्छे कर्म, सत्य और राम (भगवान) का नाम।

हम लोग बचपन से ही समाज की उस भेड़-चाल का हिस्सा बन चुके होते हैं जो हमें जीवन की स्थूल आवश्यकताओं से ऊपर उठने ही नहीं देती। हमें अपना बोध तक नहीं होता जब हमारे अभिभावक हमारी शिक्षा और व्यवसाय आदि के बारे में अपनी आशाओं की पोटली हम पर लाद चुके होते हैं। यह समाज हमारे संस्कार, रूचि और बौद्धिक क्षमता को धता बता कर अपनी सोच के अनुसार हमारे जीवन जीने का एक तरीका निर्धारित कर चुका होता है। अच्छी शिक्षा, अच्छा विवाह, अच्छी नौकरी आदि सफल जीवन के पैमाने बना दिए जाते हैं। लेकिन अच्छी नौकरी, अच्छी शादी वगैरह के बाद क्या व्यक्ति आतंरिक रूप से शाश्वत सुख की प्राप्ति कर पाता है? अपने जीवन की ऊपरी परत को चमकीला दिखाए वह व्यक्ति आंतरिक सतह पर ठगा हुआ सा महसूस करता है। आपने कभी सोचा है कि जीवन की सबसे कीमती चीजें जैसे दोस्तों के साथ समय बिताना, सुबह ठंडी हवा में चहलकदमी करना, हंसना, गले लगाना, गहरी नींद सोना वगैरह सब मुफ्त में उपलब्ध हैं। पैसे से शरीर का सुख तो मिल सकता है लेकिन आत्म तृप्ति नहीं।

दूसरा भ्रम है अपने माँ, बाप, पति, पत्नी, बच्चे, मकान, पैसे, संपत्ति वगैरह को अपना परमानेंट रिश्तेदार मान लेना। युधिष्ठिर ने यक्ष को जो बात कही थी कि हर इंसान ऐसे जीता है कि वह कभी मरेगा ही नहीं वह बात आज के समय में बिलकुल साफ नजर आती है। व्यक्ति की अपने परिवार, संपत्ति वगैरह में इतनी घोर आसक्ति हो जाती है कि 80 साल के प्राण छोड़ते बूढ़े व्यक्ति का मन सिर्फ इसी चीज में अटका होता है कि अहमदाबाद में रहने वाले उसके बड़े बेटे को बुलवा दिया जाए या उसकी छोटी बेटी को ससुराल से बुलवा लिया जाए। मरने से पहले वह एक बार उससे मिलने की आखिरी इच्छा जाहिर करता है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में साफ-साफ कहा है कि मरते वक्त कोई इंसान जिस किसी का भी स्मरण अपने मन में रखते हुए प्राण त्यागता है, वह उसी गति को प्राप्त करता है। कोई किसी देवता की ही सारी उम्र पूजा करे और मरते समय उसी का ध्यान करे तो वह उसी देवता के लोक को प्राप्त करेगा। कोई मरते समय अपने बेटे में ही मन को रखता है तो मरने के बाद उसे अगला जन्म अपने बेटे के ही वंश में मिलता है। पुराने समय में एक महान राजा हुए हैं जिनका नाम था भरत। इन्हें जड़भरत नाम से भी जाना जाता है। इन्हीं के नाम से हमारे देश को भारत कहा जाता है। बहुत समय तक राज करने के बाद ये अपने बेटों को राज्य सौंपकर एकांत में जाकर रहने लगे। वहीं पर वह भगवान का ध्यान करते रहते थे। एक बार वह नदी में स्नान कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक गर्भवती हिरणी ने शेर के डर से नदी पार करने के लिए नदी में छलांग लगा दी। उसी समय उसके गर्भ से मृगशावक (हिरण का बच्चा) निकलकर पानी में गिर पड़ा। हिरणी नदी में डूब गयी लेकिन उसके बच्चे को डूबता देख जड़भरत को उस बच्चे पर दया आ गई। उन्होंने नदी में कूदकर उसे बचा लिया और अपने आश्रम पर ले आये। वे बड़े प्यार से उस हिरणी के बच्चे का पालन करने लगे। धीरे-धीरे भरत जी का मन उस हिरणी के बच्चे में आसक्त हो गया। वह उठते-बैठते, खाते-पीते उस बच्चे का ही चिंतन करते रहते। उनकी हिरणी के बच्चे में आसक्ति इतनी ज्यादा बढ़ गई कि समय के प्रभाव से जब उनकी मृत्यु हुई तो मृत्यु के समय भी वह उस हिरण का ही चिंतन कर रहे थे। इस कारण उन्हें अगला

जन्म एक हिरणी के गर्भ से हुआ।

वेद में लिखा है कि कुछ लोगों को तो मनुष्य का जन्म करोड़ों कल्प बीत जाने पर मिलता है। सोच कर देखिये एक करोड़ साल कितना विशाल समय का दायरा है। और एक कल्प की अवधि 432 करोड़ साल होती है। और करोडो कल्पों के समय के माप के तो कहने ही क्या। इतने लंबे समय के बाद अगर किसी जीव को मनुष्य जीवन मिले और वो अपनी 60-70 साल की जिन्दगी को ही सब कुछ माने और उसी में घोर आसक्ति रखे तो यह बदकिस्मती और बेवकूफी ही है। परिवार के त्याग का मैं समर्थन नहीं करता लेकिन परिवार वालों को ही सब कुछ मानकर उन्हीं में आसक्ति रखने को मैं निंदित मानता हूँ। वेद के अनुसार मन की आसक्ति केवल भगवान् में रखना ही श्रेष्ठ है, किसी और में नहीं।

बूढ़े वेद बाबा से कुछ गपशप

एक मंदिर के कोने में
कहीं दुबके से, सिमटे से
एक बुज़ुर्ग खड़े थे
आंखों में आंसू लिए
बाल सफेद, बूढ़ी पलकें
बोले मैं वेद हूँ
मैंने कहा तो मैं क्या करूं
बोले मदद करो
मुझे दवा चाहिए
कोई बंदगी करता हो
उसकी दुआ चाहिए
मैंने कहा आगे बढ़ो
मैं तो मुसाफिर हूँ
तुम होगे खुदा के बंदे
मैं बस एक काफिर हूँ

(यह घटना वेद के चरित्र वर्णन को रोचक बनाने के लिए उनके साथ बातचीत की एक कोरी कल्पना भर है, लेकिन वेद की सारी बातें भगवान की ही तरह शाश्वत सत्य हैं)

ग्रंथों में लिखा है कि वेद संसार की रचना के समय भगवान के श्वास से प्रकट होते हैं और संसार की उत्पत्ति को तो करोड़ों साल हो चुके हैं। फिर तो अब तक वेद काफी उम्रदराज हो चुके होंगे। कुछ दिन पहले मैं एक मंदिर में गया हुआ था। वहां एकाएक मेरी नजर एक बूढ़े आदमी पर पड़ी। देखने में वह काफी थके से लग रहे थे। मंदिर के कोने में दीवार का सहारा लेकर खड़े हुए वह छत से अपने ऊपर गिर रही धूल को बार-बार साफ कर रहे थे। मैं उनके पास गया और उनका अभिवादन किया। उन्होंने हैरानी से गर्दन उठाते हुए बूढ़ी, कमजोर आँखों से मेरी तरफ देखा। फिर वह वापस अपने फटे मैले कपड़े झाड़ने में लग गए। मैंने पूछा कि आप कौन हैं? क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ? उन्होंने थोड़ा खीझते हुए मुझसे कहा कि इन दिनों तो मेरी तरफ कोई आता नहीं, तुम किस कारण से आये हो? मैंने कहा कि आप की हालत देख कर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने दोबारा उनसे पूछने की कोशिश की -"बाबा, आप कौन हैं?"

उन्होंने थोड़ा हिचकिचाते हुए जो जवाब दिया वह सुनकर मेरे पैरों तले जमीन खिसक गई। उनका जवाब था -"मैं वेद हूँ, कलियुग में समय के प्रभाव से मेरी यह हालत हो गई है। जैसे-जैसे समय के प्रभाव से आदमी और अधिक विवेकहीन होता जा रहा है, वैसे-वैसे उसने मेरा आदर करना और मेरे बताये रास्ते पर चलना छोड़ दिया है। मैं अब अपने सभी उपनिषद नामक बेटों, पुराण और वेदांत भाइयों, स्मृति और सहिंता नामक बेटियों वगैरह के साथ मंदिरों और लाइब्रेरी के कोनों में ही रहा करता हूँ।"

वेद को अपने सामने देखकर कुछ पल तो मुझे अपनी आँखों और किस्मत पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। लेकिन थोड़ी देर बाद जब मैं कुछ सहज हुआ तो मैंने उनसे काफी देर बात की। वह भी किसी अच्छे गुरु की तरह मेरे हर वाजिब और गैरवाजिब सवाल का जवाब धैर्य से देते रहे। बातचीत के दौरान जो कुछ मैंने समझा और सीखा, उसका सार मैं आगे बता रहा हूँ। यह ज्ञान कुछ लोगों को थोड़ा उबाऊ लग सकता है लेकिन वेद के बारे में कम से कम इतनी जानकारी हम मनुष्यों को होना अपेक्षित है।

वेद 'विद' शब्द से बना है जिसका मतलब होता है ज्ञान। वेद को श्रुति भी कहा जाता है। वेद को भगवान का ही एक स्वरूप माना जाता है। वेद को 'अपौरूषेय' कहा गया है, मतलब जिसकी रचना किसी इंसान ने नहीं की, बल्कि खुद भगवान से यह प्रकट हुआ था। वेद के बारे में बृहदारण्यक उपनिषद कहता है-

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद्

यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वांगिरसः

(बृहदारण्यक उपनिषद 4.5.11)

मतलब - चारों वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद भगवान के श्वास से ही निकले हैं।

सनातन दर्शन (वैदिक दर्शन) में मनुष्य को अल्पज्ञ (कम दिमाग और नॉलेज वाला) माना गया है इसलिए किसी विषय पर उसके विचारों को आखिरी प्रमाण नहीं माना जा सकता। किसी विषय को साबित करने के लिए अगर किसी के विचारों को आखिरी माना जा सकता है, तो वह केवल सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) ही हो सकता है। चूंकि वेद में बताया गया ज्ञान किसी व्यक्ति के विचार नहीं बल्कि भगवान से निकला हुआ ज्ञान है इसलिए वेद को सभी आस्तिक ज्ञान के मामले में फाइनल अथॉरिटी मानते हैं।

वेद संसार के रहस्यों के साथ-साथ भगवान, जीव यानी हम और माया शक्ति आदि के बारे में डिटेल से बताता है। संसार बनने के बाद से यह ज्ञान ऋषियों के द्वारा गुरू शिष्य परंपरा के जरिए अगली पीढ़ियों तक पहुंचता रहा और ज्ञान की फाइनल अथॉरिटी के रूप में स्थापित रहा। करीब 5000 साल पहले जब कलियुग की शुरुआत हुई, तब आवश्यकता महसूस हुई कि कलियुग में मनुष्य की उम्र, विवेक और ज्ञान शक्ति बहुत ही कमजोर रह जाएगी। उस समय के ज्ञानी लोगों को यह पता था कि आने वाले समय में लोग वेद के जटिल रहस्यों को नहीं समझ पाएंगे और उनके लिए सरल ज्ञान के स्रोतों की जरूरत होगी। इसी कारण भगवान के अवतार महर्षि वेद व्यास ने वेद के चार भाग किए। इसके साथ ही उन्होंने अट्ठारह पुराणों, महाभारत और भगवद्गीता वगैरह की भी रचना की जो वेद का ही विस्तार हैं और जिनमें व्यक्ति के कर्तव्यों, जीवन का लक्ष्य आदि रहस्यों को सरल भाषा में समझाया गया है। दरअसल, वेद व्यास एक पदवी है। हर द्वापर युग के आखिर में कलियुग के लोगों के लिए वेद व्यास वेद का विभाजन करते हैं। अभी पांच हजार साल पहले समाप्त हुए द्वापर युग में कृष्ण द्वैपायन नाम के वेद व्यास ने वेद का विभाजन किया था। वेद के विभाजन के बाद जो चार भाग हुए वे इस प्रकार हैं -

ऋग्वेद

ऋग्वेद चारों वेदों में सबसे पहला है। इसे सनातन धर्म का सबसे आरंभिक स्रोत माना जाता है। ऋग्वेद विज्ञानकांड का ग्रंथ है। ऋग्वेद शब्द दो शब्दों के मिलने से बना है, ऋक् और वेद। ऋक् शब्द संस्कृत की ऋच् धातु से बना है जिसका मतलब है स्तुति। स्तुति का मतलब है गुण और गुणी का वर्णन। ऋग्वेद में 10589 मन्त्र हैं जो कि 1028 सूक्तों के रूप में प्रकट किए गए हैं। सुक्त का मतलब है सुन्दर कथन। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, वरूण, मरूद्गण, अश्विनीकुमार वगैरह देवताओं की स्तुतियां हैं। स्तुतियों के अलावा ऋग्वेद में आत्मा परमात्मा, जीवन प्रकृति, ज्ञान विज्ञान और संसार के बहुत से पदार्थों का जिक्र मिलता है। ऋग्वेद के वर्णनों में पहले के समय में विकसित रही आर्य जाति की रीतियों, नीतियां, सामाजिक आचारों और व्यवहारों के बारे में भी बताया गया है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद एक महत्वपूर्ण श्रुति धर्मग्रन्थ है। यजुर्वेद यजुस और वेद शब्द से बना है। यजुस का मतलब है यज्ञ। यजुर्वेद में यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिए मन्त्र हैं। इसे ऋग्वेद के बाद दूसरा वेद माना जाता है। यज्ञ में कहे जाने वाले गद्यात्मक मंत्रों को ही यजुस कहा जाता है। यजुर्वेद एक कर्मकाण्ड ग्रन्थ है। इस वेद में ज्यादातर यज्ञों और हवनों के नियम और विधान हैं।

यजुर्वेद में दो शाखाएं हैं - दक्षिण भारत में प्रचलित कृष्ण यजुर्वेद और उत्तर भारत में प्रचलित शुक्ल यजुर्वेद शाखा। कुछ विद्वान शुक्ल यजुर्वेद में सिर्फ मूल मंत्र होने से इसे शुक्ल यानी शुद्ध वेद कहते हैं तो कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ साथ उनका इस्तेमाल और व्याख्या वगैरह भी शामिल हैं। विश्वविख्यात गायत्री मंत्र और महामृत्यु´जय मंत्र भी यजुर्वेद में ही हैं। संस्कारों और यज्ञीय कर्मकाण्डों के सबसे ज्यादा मन्त्र यजुर्वेद के ही हैं।

सामवेद

सामवेद गीत संगीत प्रधान वेद हैं। सामवेद चारों वेदों में आकार के हिसाब से सबसे छोटा है। हालांकि इसकी प्रतिष्ठा सबसे ज्यादा है जिसका एक कारण भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' (मतलब वेदों में मैं सामवेद हूँ) कहना भी है। सामवेद में शामिल मंत्रों को देवताओं की स्तुति के समय गाया जाता था। सामवेद की तीन महत्वपूर्ण शाखाएं हैं - कौथमीय, जैमिनीय, राणायनीय। सामवेद का प्रमुख देवता सविता या सूर्य है। इसमें मुख्य रूप से सूर्य की स्तुति के मंत्र हैं लेकिन इन्द्र, सोम का भी इसमें काफी जिक्र है। भारतीय संगीत के इतिहास में सामवेद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसे भारतीय संगीत का मूल कहा जा सकता है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद चारों वेदों में आखिरी है। इस शब्द में अथर्वन् और अंगिरस दो पुराने ऋषिकुलों के नाम शामिल हैं। इससे कुछ पंडितों का मत है कि इनमें से पहला शब्द अथर्वन् पवित्र दैवी मंत्रों से संबंध रखता है और दूसरा मोहन मंत्रों से। अथर्ववेद संस्कृति, धर्म, विश्वास, रोग, औषधि (दवाइयाँ), उपचार वगैरह की जानकारी का खजाना है। इतनी अलग-अलग प्रकार की ढेर सारी जानकारी किसी और वेद में नहीं है। हालांकि इस वेद में जादू, झाड़-फूंक के मंत्र, रोग वगैरह के उपचार के लिए मंत्र काफी तादाद में मिलते हैं लेकिन इनके अलावा उसका विस्तार उन सारे विषयों से संबंधित है जिन्हें आज साइंस में पहचान मिली हुई है। ज्योतिष, गणित और फलित, रोग निदान और मेडिकल साइंस, यात्रा निदान, राज्याभिषेक वगैरह पर तो यह पहला प्रमाणिक ग्रंथ है।

वेद का एक और हिस्सा है जिसे उपनिषद कहा जाता है। दरअसल वेद के पूर्व भाग में कर्मकांड और उत्तर भाग में ज्ञान सम्बंधित चर्चा है। उत्तर भाग को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषद ही वेद की आत्मा है। उपनिषद में ही वेद का वह असली ज्ञान छिपा है जो इंसान को भगवान तक पहुँचने का रास्ता दिखाता है। इनमें ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन दिया गया है। उपनिषद शब्द का साधारण अर्थ है पास बैठना (विद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरू के पास बैठना)। उपनिषदों में ऋषियों और शिष्यों के बीच बहुत सुन्दर और गहरी चर्चाएं हैं जो पढ़ने वाले को वेद के असली ज्ञान और रहस्यों तक पहुंचाते हैं। उपनिषदों के बारे में कुछ पश्चिमी दार्शनिकों ने कहा है कि उपनिषद ज्ञान का सूरज है और बाकी पश्चिमी दर्शन सिर्फ किरण भर हैं। सबसे मुख्य उपनिषद दस कहे गए हैं - ईशोपनिषद, केनोपनिषद, कठोपनिषद, प्रश्नोपनिषद, मुण्डकोपनिषद, माण्डूक्योपनिषद, तैत्तिरीयोपनिषद, एतरेयोपनिषद, छान्दोग्योपनिषद और बृहदारण्यकोपनिषद।

अब चलते हैं वेद के एक और विस्तार की तरफ जिसका नाम है पुराण। पुराणों को स्मृति

ग्रन्थ कहा जाता है। पुराण का मतलब है प्राचीन। पुराणों की रचना भी महर्षि वेदव्यास 'कृष्ण द्वैपायन' ने की थी। इसका मूल उद्देश्य कहानियों और घटनाओं वगैरह के माध्यम से कलियुग के कम बुद्धि और थोड़े ज्ञान वाले लोगों को सगुण साकार भक्ति (भगवान के अलग-अलग रूपों की भक्ति) की ओर प्रेरित करना था। कर्मकांड (वेद का पूर्व भाग) से ज्ञान (उपनिषद) की ओर आते हुए भारतीय मानस में पुराणों के माध्यम से भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित करने के उद्देश्य से ही पुराणों की रचना हुई। पुराणों की मदद से धीरे-धीरे मनुष्य अवतारवाद या सगुण साकार भगवान की भक्ति की ओर प्रेरित हुआ।

पुराणों में बताये गए विषयों की कोई सीमा नहीं है। इसमें ब्रह्मांड की जानकारी, देवी देवताओं, राजाओं, ऋषि मुनियों की वंशावली, कहानियाँ, तीर्थयात्रा, मंदिर, मेडिकल साइंस, एस्ट्रोनॉमी के साथ साथ धर्मशास्त्र और दर्शन का भी जिक्र है।

पुराने समय से पुराण देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों वगैरह का मार्गदर्शन करते रहे हैं। पुराण इंसान को धर्म और नीति के अनुसार जिन्दगी जीने की शिक्षा देते हैं। वेद बहुत ही मुश्किल और शुष्क भाषा शैली में लिखे गए हैं लेकिन वेदों की मुश्किल भाषा में कही गई बातों को पुराणों में बड़ी आसान भाषा में समझाया गया है। मुझे याद है इंजीनियरिंग की पढाई के दौरान जब सेमेस्टर की शुरुआत होती थी तो हमारे टीचर्स हमें अलग-अलग सब्जेक्ट्स के लिए विदेशी लेखकों की बड़ी मोटी-मोटी जटिल भाषा में लिखी गयी किताबों की सिफारिश करते थे। लेकिन हम लोगों को उन किताबों से पढ़ने में बिल्कुल मजा नहीं आता था। इसलिए मैं और मेरे कुछ दोस्त दिल्ली के नई सड़क इलाके से भारतीय लेखकों की उन्हीं सब्जेक्ट्स पर आसान भाषा में लिखी गई किताबें खरीदते थे और उन्हीं से पढाई करते थे। कुछ ऐसा ही हाल वेद और पुराणों के सन्दर्भ में है।

पुराण साहित्य में अवतारवाद का गुणगान किया गया है। निर्गुण निराकार भगवान की सत्ता को मानते हुए सगुण साकार भगवान की उपासना करना इन पुराणों का विषय है। पुराणों में अलग-अलग देवी देवताओं को केन्द्र में रखकर पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म और कर्म-अकर्म की कहानियां हैं। पुराणों में देवी देवताओं के अनेक स्वरूपों को लेकर एक विस्तृत विवरण मिलता है।

अथर्ववेद के अनुसार -

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह

मतलब - पुराणों का प्राकट्य ऋक्, साम्, यजुस वगैरह वेदों के साथ ही हुआ था। शतपथ ब्राह्मण में तो पुराण को वेद ही कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद ने भी पुराण को वेद कहा है।

बृहदारण्यक उपनिषद और महाभारत में कहा गया है -

इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थ मुपबर्हयेत्

मतलब - वेद का अर्थ और विस्तार पुराण के द्वारा करना चाहिए।

पुराणों की संख्या अट्ठारह है जो इस प्रकार है

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम्।

अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥

उनके नाम ये हैं - विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरूड़, भविष्य, ब्रह्माण्ड।

वेदान्त दर्शन

वेदान्त ज्ञानयोग की ही एक शाखा है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्रोत उपनिषद ही हैं जो वेद का सार समझे जाते हैं। वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है 'वेदों का अंत'। शुरुआत में उपनिषदों के लिए वेदान्त शब्द का प्रयोग हुआ लेकिन बाद में उपनिषदों के सिद्धान्तों को आधार मानकर जिन विचारों का विकास हुआ, उनके लिए भी वेदान्त शब्द का प्रयोग होने लगा।

दरअसल उपनिषद वेद के अन्त में आते हैं। वैदिक पढ़ाई की नजर से भी उपनिषदों की पढ़ने की बारी आखिर में आती थी। सबसे पहले संहिताओं को पढ़ाया जाता था। उसके बाद गृहस्थ में प्रवेश करने पर यज्ञ वगैरह जैसे कर्म करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थों की जरूरत पड़ती थी। वानप्रस्थ या सन्यास आश्रम में प्रवेश करने पर आरण्यकों की जरूरत होती थी। जंगल या एकांत में रहते हुए लोग उपनिषद की सहायता से जीवन और संसार की पहेली को सुलझाने की कोशिश करते थे। वेदों के सबसे ज्यादा माने जाने वाले और सबसे श्रेष्ठ सिद्धांत ही वेदान्त का हिस्सा हैं। भगवान का सबसे गहन ज्ञान वेदान्त के रूप में सबसे पहले उपनिषदों में ही प्रकट हुआ है।

श्वेताश्वर उपनिषद के अनुसार -

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम्।

नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्राय अशिष्याय वा पुनः।।

वेदांत का सबसे गहन सच यही है जो पुराने समय में घोषित किया गया था। इस ज्ञान को अशांत मन वाले व्यक्ति या ऐसा गुरु जिसका कोई शिष्य न हो, ऐसे व्यक्तियों को बेकार गंवाने के लिए नहीं दिया जाना चाहिए।

वेदान्त की तीन शाखाएं सबसे ज्यादा जानी जाती हैं - अद्वैत वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत वेदान्त। आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और श्री माधवाचार्य को क्रमशः इन तीनों शाखाओं को शुरू करने का श्रेय जाता है। इसके अलावा भी ज्ञानयोग की अन्य शाखाएं हैं। उन शाखाओं को शुरू करने वाले कुछ प्रमुख विद्वान वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, निम्बार्काचार्य आदि रहे हैं। आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदांती हुए हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष और रमण महर्षि प्रमुख हैं। अद्वैत और द्वैत वेदांत शाखाओं की बहुत चर्चा की जाती है। मैं बहुत शार्ट में इनके मूल सिद्धांतों को साझा करना चाहता हूँ।

अद्वैत विचारधारा को शंकर अद्वैत (शंकराचार्य द्वारा शुरू करने के कारण) भी कहा जाता है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म (भगवान) ही केवल एक सच है और बाकी सब मिथ्या (झूठ, भ्रम) है। जीव केवल अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता जबकि ब्रह्म तो उसके अंदर ही मौजूद है।

उन्होंने अपने ब्रह्मसूत्र में लिखा है -

अहं ब्रह्मास्मि जिसका मतलब है मैं ब्रह्म हूँ

इसके अलावा अद्वैत वेदांत में एक और बात कही जाती है -

तत्वमसि (तत् त्वम् असि) मतलब तू वह है (जीव ही ब्रह्म है)

स्वामी शंकराचार्य ब्रह्म के दो रूप मानते थे, एक माया के भ्रम में फंसा जीव (यानी हम सब) और दूसरा सब प्रकार की माया से ऊपर शुद्ध ब्रह्म (यानी भगवान)। जब जीव माया के जाल को पार कर 'मैं ब्रह्म हूँ' वाली अवस्था को पहुंच जाता है तो वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। अद्वैत मत के अनुसार जीव और ब्रह्म की भिन्नता का कारण माया है जिसे अविद्या भी कहते हैं। जिस समय जीव से यह माया दूर हो जाती है, उस समय वह ब्रह्म हो जाता है। यह माया अनादि काल से ही जीव को लगी हुई है।

अद्वैत दर्शन की एक बड़ी मजेदार बात आपको बताता हूँ। अपने आप को विद्वान मानने वाले कुछ साधु सन्यासियों ने 'अहम् ब्रह्मास्मि' या 'मैं ब्रह्म हूँ' सिद्धांत का सिर्फ कुछ हिस्सा पकड़ कर खुद को ही ब्रह्म यानी भगवान मान लिया। वो लोग कहते हैं कि ब्रह्म हम सब खुद ही हैं। पर वे लोग यह भूल जाते हैं कि भगवान तो सभी विकारों जैसे ईर्ष्या, दुश्मनी, गुस्सा वगैरह से कोसों दूर है और हम लोग इन विकारों की पूरी की पूरी खान हैं। अगर कोई आदमी इन झूठे अद्वैतवादियों में से किसी को भी थोड़ा बुरा-भला कह दे तो वह तथाकथित 'ब्रह्म' आग बबूला हो कर उस आदमी के पीछे दौड़ पड़ेगा। वह अपना ब्रह्मत्व खो बैठेगा। तो यह कैसा ब्रह्म है जिसे खुद के क्रोध पर ही कंट्रोल नहीं है? दिक्कत यह है कि चूंकि अद्वैत दर्शन के अनुसार जीव और ब्रह्म में कुछ समानताएं हैं जैसे हम भी अनादि समय से हैं और भगवान भी, हम आत्मा स्वरूप जीवों को भी नष्ट नहीं कर सकते और भगवान को भी नहीं इसलिए ऐसी कुछ समानताओं के कारण जीव को ब्रह्म की तरह सनातन माना जाता है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम लोग खुद को ब्रह्म ही मान बैठें। इन समानताओं के अलावा हम में और भगवान में इतने भेद हैं कि हम ब्रह्म हो ही नहीं सकते। भगवान की अनंत शक्तियां हैं और हमारे पास बहुत ही सीमित शक्ति है। भगवान सर्वज्ञ हैं और हम लोग अल्पज्ञ हैं। इसलिए हम ब्रह्म हैं भी और नहीं भी।

अब बात करते हैं द्वैत दर्शन की। द्वैत वेदांत के अनुसार संसार सच है और इसमें होने वाले भेद भी सच हैं। द्वैतवाद में ईश्वर, प्रकृति और जीव इन तीन अलग-अलग तत्वों को सच माना गया है। इनमें से प्रकृति और जीव ईश्वर पर आश्रित हैं। केवल ईश्वर अनाश्रित (किसी पर निर्भर नहीं) तत्व है। प्रकृति और जीव में बदलाव होते रहते हैं जबकि ईश्वर में कोई बदलाव नहीं होता मतलब वह शाश्वत है। वही संसार को बनाने वाला, पालने वाला और नष्ट करने वाला है। ईश्वर पूर्ण है और केवल भक्ति से प्रसन्न होता है। ईश्वर के गुण अनन्त हैं इसलिए उसकी सत्ता सीमित नहीं है। जीवों की संख्या अनंत है और वे अणुरूप हैं। भौतिक शरीर और कर्मों के बंधन से वे दुख भोगते हैं। ईश्वर जीवों का शासक है, फिर भी असली कर्ता, भोक्ता और कर्म का उत्तरदायी जीव ही है।

उपनिषदों में एक श्लोक है -

एकमेव अद्वितीय ब्रह्म, नान्यत किंचन मिषत

जिसका मतलब है ब्रह्म द्वितीय से रहित एक ही है, अन्य कोई मिथ्या वस्तु है ही नहीं।

इस श्लोक का द्वैत बुद्धि से निकलने वाला अर्थ है -

यह संसार मिथ्या है, सत्य तो ब्रह्म है।

लोग इन्हीं अलग-अलग विचारधाराओं के प्रभाव में अलग-अलग तरीके से भगवान की उपासना करते हैं। इसलिए भगवद्गीता में भगवान कहते हैं -

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

तस्य तस्याचलां श्रद्धा तामेव विद्याम्यहम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.26)

जिसका मतलब है सत्य को पूरी तरह न जानने वाले लोग, सत्य को अपनी-अपनी श्रद्धा से, जैसा भी मानकर पूजना चाहते हैं, उस उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी रूप के प्रति स्थिर कर देता हूँ।

इस तरह वेद ने अपना बहुत ही जटिल ज्ञान शॉर्ट में मुझे समझाया। हालांकि मेरे चेहरे के भाव देखकर वेद को समझ आ गया था कि उनके समझाए ज्ञान में से आधे से ज्यादा मेरे सिर के ऊपर से चला गया था। मैंने कहा कि मेरे जैसे तो बहुत से लोग वेद उपनिषद के नाम से ही घबराते हैं। इतना जटिल ज्ञान तो पचा पाना जरा मुश्किल है। आप कोई ऐसा आसान तरीका बताइये जिससे सामान्य लोग वेद के ज्ञान को ठीक-ठीक समझ जाएं।

तब वेद ने कहा - "तुम ठीक कहते हो। वेद के ज्ञान को खुद पढ़ कर तो अच्छे-अच्छे ज्ञानियों का दिमाग चकरा जाता है। तुम भी इसे अपनी सीमित बुद्धि से नहीं जान पाओगे। इसलिए जीवन में वेद के किसी वास्तविक ज्ञानी के मिलने की आशा करो। वही तुम्हें असली ज्ञान करा पाएंगे"।

मैंने पूछा कि ऐसे गुरु कहाँ मिलेंगे?

"ईश्वर से प्रार्थना करो" ऐसा कहते हुए वेद ने वहां से किसी दूसरे मंदिर की तरफ रुख कर लिया।

सबसे बड़ा दोस्त और दुश्मन

गर पूछता तू मुझसे ऐ दिल
बताता तुझे हाल-ए-जिन्दगी
तू ही रूह का बैरी था
और तू ही उसका हमदर्द

क्या ऐसी कोई चीज हो सकती है जो हमारी सबसे बड़ी दोस्त भी हो और दुश्मन भी? इस संसार में तो हमें ऐसा कोई व्यक्ति या कोई चीज नजर नहीं आती जो इन दोनों पैमानों पर खरी उतरती हो। वेद के अनुसार ऐसी एक चीज है। वह है हमारा मन। हमारा मन हमारा सबसे बड़ा उद्धारक (भला करने वाला) भी है और सबसे ज्यादा पतन कराने वाला भी है।

एक श्लोक में कहा गया है -

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।

अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितं॥

मतलब - अशुद्ध और शुद्ध, ऐसे दो प्रकार का मन कहा गया है, कामना और संकल्प वाला मन अशुद्ध और कामना रहित हो वह शुद्ध।

एक और श्लोक के अनुसार -

सुखाय दुःखाय च नैव देवाः न चापि कालः सुहृदोऽरयो वा।

भवेत्परं मानसमेव जन्तोः संसारचक्र भ्रमनेकहेतुः॥

मतलब - देवता सुख या दुख नहीं देते, काल (समय) भी दोस्त या दुश्मन नहीं है, लेकिन मानव का मन ही संसार के चक्कर में भ्रमण कराने का कारण है।

इन दो श्लोकों में यह बताने की कोशिश की गई है कि अगर मन शुद्ध हो तो वही सबसे बड़ा दोस्त है लेकिन अगर मन अशुद्ध हो तो वही मन हमें आध्यात्मिक उन्नति करने से रोकता है और जीवन-मरण के चक्कर में फंसाये रखता है। योग के दौरान बड़े-बड़े तपस्वी ध्यान की अवस्था में मन को ही स्थिर करने की कोशिश करते हैं। मन को अपने वश में करना ही व्यक्ति के लिए इस संसार में सबसे मुश्किल काम है।

कुछ समय पहले हमारे किसी रिश्तेदार, जिनकी उम्र करीब 80 वर्ष के आसपास है, उनकी तबियत खराब हो गई थी। मैं और मेरी माँ उनसे मिलने और उनका हालचाल पूछने उनके घर गए थे। जिस कमरे में वह व्यक्ति लेटे हुए थे, उस कमरे में जब हम दाखिल हुए तो हमें देखते ही उन्होंने एक मजेदार चीज की। उनके बिस्तर पर सिरहाने के पास एक पर्स (वॉलेट) रखा हुआ था जिसमें उनके कुछ पैसे थे। हमें देखते ही उन्होंने वह पर्स झट से उठा कर तकिये के नीचे छिपा लिया। यह देखते ही मेरे चेहरे पर एक मुस्कान सी आ गई। मेरे मन में यह स्वाभाविक विचार आया की 80 साल का एक व्यक्ति भी किस तरह माया रुपी मकड़ी के जाल में उलझा रहता है। भगवान उन्हें लंबी उम्र दे, मगर कुछ समय बाद जब उनकी मृत्यु हो जाएगी, तब तकिये के नीचे से वह पर्स निकाल कर शायद कोई और ही इस्तेमाल करेगा। एक इतना वृद्ध व्यक्ति भी अगर पैसे के प्रति इतना मोह मन में रखता है तो इसका मतलब हमारी दुनिया और सामाजिक संरचना में कहीं कुछ तो मूल स्तर पर गलत है। उसी माहौल में हमारा ये मन पलता बढ़ता है और उन्हीं सारे

विकारों को जिन्हें वह बचपन से देखता आ रहा होता है, अपना साथी बना लेता है। मन को नियंत्रित करके अगर सही मार्ग पर न चलाया जाए तो 80 साल की उम्र में भी यह आसक्तियों से हमें चिपटाये रखेगा, मुक्त नहीं होने देगा।

आप आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं और जिह्वा (जीभ) से बोलते हैं। क्या आपने कभी अनुभव किया है कि अगर आप का मन कहीं और लगा हुआ हो और आप कोई चीज उस समय सुन रहे हों तो आप को याद नहीं रहता की आप ने क्या सुना था? इसका कारण है कि मन ही सभी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियाँ - आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और कर्मेन्द्रियाँ - हाथ, पैर, वाणी, मल विसर्जन और प्रजनन की इन्द्रियां) को कंट्रोल करता है। मन को 11वीं इन्द्रिय माना जाता है।

इंसान का मन संसार की सबसे अशांत चीज है। इस अशांति के कारण ही व्यक्ति संसार में अपनी इच्छाओं को पूरा करने के साधनों की तलाश में भटकता रहता है। लेकिन जैसे ही व्यक्ति को अपनी इच्छा की एक वस्तु मिलती है उसका अशांत मन तुरंत किसी दूसरी चीज की तलाश में दौड़ने लगता है।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए यह दौड़-भाग हमारे जीवन के आखिर तक चलती रहती है। भगवद्गीता में बताए गए योग का एक प्रमुख उद्देश्य अशांत मन पर नियंत्रण करना है। गीता हमसे इन्द्रियों के भोगों को छोड़ने के लिए नहीं कहती। गीता का उपदेश है कि हमें मन पर नियंत्रण रखते हुए इन्द्रियों के विषयों का भोग करना चाहिए।

अमृतबिंदु उपनिषद कहता है -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासंगो मुक्त्यै निर्विषयं मनः।।

मतलब - मन ही इंसान के बंधन और मोक्ष का कारण है। हमेशा आसक्ति और इच्छाओं को पूरा करने में लगा मन बंधन का कारण है। यह व्यक्ति को ऊपर उठने नहीं देता। वहीं विषयों से विरक्त मन मुक्ति का कारण है। ख्वाहिशों और महत्वाकांक्षाओं की अंधी दौड़ में न भाग कर जो मन ईश्वर की शरण लेता है वह मोक्ष के दरवाजे तक पहुँच जाता है।

मोक्ष के लिए मन के साथ ही मेहनत करनी पड़ेगी। गंगा में नहाने से मोक्ष नहीं मिलेगा। एक बंद बोतल में अगर आप कचरा भर कर गंगा नदी में 20 साल तक डुबो कर रखेंगे तो क्या वह कचरा शुद्ध हो जायेगा? वह कचरा 20 साल बाद भी कचरा ही रहेगा। इसी प्रकार अगर हमारा मन मलिन है, दूषित है तो हमारे शरीर को बार-बार गंगा में डुबाने से कुछ नहीं होगा। जब तक हम मन रुपी यंत्र को वश में नहीं करेंगे, अपनी परेशानियों से ऊपर नहीं उठ पाएंगे।

भगवान जब एक नवजात शिशु को इस संसार में भेजता है तो उसका मन कोरे कागज की तरह बिल्कुल साफ और खाली होता है। यही हमारे शरीर को मिला हुआ सबसे बड़ा वरदान है, एक ऐसा अंतःकरण जिसके अंदर शुरुआत से ही हम जो चाहे भर सकते हैं। यह पूरी तरह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम इसमें क्या भरते हैं। विडम्बना यह है कि हमारा बनाया हुआ संसार और समाज शुरुआत से ही शायद किसी और ही वेद को पढ़ता आया है। तभी तो एक ऐसे समाज

का निर्माण कर दिया गया जो अमीर और गरीब की खाई बनाता रहा, जन्म से पहले ही एक शिशु पर संप्रदाय और जाति की मोहर लगाता रहा और उच्च, निम्न वर्ग के लिए अलग पूजास्थल तक बनाता रहा। इससे बड़ी मूर्खतापूर्ण बात क्या हो सकती है कि वह भगवान जो खुद ही सबके भीतर बैठा हुआ है, उसके मंदिर में प्रवेश करने की एक सामजिक तबके को अनुमति होती है, दूसरे को नहीं। मैं उन कुलीन वर्ग के लोगों से, जिन्होंने इन नियमों को बनाया, पूछना चाहता हूँ कि क्या वो लोग नीचे तबके के लोगों के हृदय से उस परमात्मा को निकाल सकते हैं जो उनके भीतर स्थित है? अगर नहीं तो बाकी के आडंबरों में वे लोग सिर्फ अपना समय बर्बाद कर रहे हैं।

समाज उस कोरे मन वाले शिशु को इस तरह पालता है कि बड़ा होते-होते वह बच्चा खुद ही समाज बन चुका होता है। बचपन से ही उस बच्चे के मन में संसार के सारे विकार जैसे कपट, झूठ बोलना, लालच वगैरह स्वादिष्ट खाने की तरह ठूंस दिए जाये हैं। उसका मन, जो एक कोरा कागज था, उस पर इतनी टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें बन जाती हैं कि फिर उस कागज पर कुछ और लिखना संभव नहीं रहता। वेद और संतों के बताए मार्ग को उसका मन बिल्कुल भूल चुका होता है और यहीं संसार में जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फंसा रहता है। अगर व्यक्ति को मुक्ति चाहिए तो सिर्फ मन रुपी उछल-कूद करते बन्दर पर लगाम कसने से और उसे संयम की रस्सी से बांधे रखने से ही मिल सकती है।

वेद में भी मन की तुलना बन्दर से ही की गई है -

मनः कपिरयम विश्वपरिभ्रमण लम्पटः।

नियंत्रणीयो यत्नेन मुक्तिमिच्छुभिरात्मनः।।

जिसका मतलब है यहाँ मन रूपी बन्दर संसार में इधर-उधर भटकने में लंपट है। मुक्ति की इच्छा वाले मनुष्य को कोशिश करके उसे काबू में रखना चाहिए।

ये दुनिया बनी ही क्यों

दुनिया तो बड़ी खूब गढ़ी है तूने ऐ कारीगर
पर दिल बनाने की गलती कर बैठा

"दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई, काहे को दुनिया बनाई"

पुराने जमाने के मशहूर फिल्म अभिनेता राज कपूर की एक फिल्म का यह गाना अपने समय में काफी ज्यादा लोकप्रिय रहा और आज भी उतना ही प्रासंगिक है। इस गाने में बिल्कुल ठीक बात पूछी गई है कि भगवान के मन में ऐसी क्या इच्छा होती है कि वह बार-बार इस संसार को बनाता है, इसी में स्थित होकर इसका पालन पोषण करता है और फिर खुद ही प्रलय के द्वारा इसको खत्म कर देता है। हम में से भी बहुत से लोग जीवन में चल रही परेशानियों और निराशाओं से घिरने पर यह सवाल जरूर उठाते हैं कि आखिर भगवान ने यह सारा मेला-झमेला बनाया ही क्यों? कुछ लोग भगवान को कोसते भी हैं कि मुझे सिर्फ दुख ही देना था तो इस दुनिया में भेजा ही क्यों?

बहुत से लोग तो इन सवालों के सही जवाब न मिल पाने के कारण नास्तिक हो जाते हैं और भगवान के अस्तित्व और उनके न्याय पर ही सवाल उठाने लगते हैं। अज्ञानता के कारण हम लोग सोचने लगते हैं कि यह कैसा परमपिता है जो अपनी ही संतानों को दुख में देख कर भी निष्क्रिय सा बैठा रहता है।

परेशानी यह है कि हम लोग भगवान की कृपा को थोड़ा स्वार्थी होकर देखने की कोशिश करते हैं। भगवान की कृपा इस चीज में नहीं आंकी जा सकती कि हमें अच्छी नौकरी मिली या नहीं, हमारा बिजनेस चमका या नहीं या हमारी मांगी हुई मन्नत पूरी हुई कि नहीं। भारत में यह बहुत आमतौर पर देखे जाने वाला दृश्य है कि मन्नत मांगने के लिए लोग किसी मंदिर विशेष में पेट के बल लेट कर जाते हैं या मंदिर के किसी कोने में धागा वगैरह बांध देते हैं। भगवान की कृपा को थोड़ा बड़े नजरिये से देखने की जरूरत है।

महाभारत युद्ध के बाद जब श्रीकृष्ण पांडवों की माता कुंती से वरदान मांगने को कहते हैं तो कुंती हाथ जोड़ कर कहती है -

विपदरू सन्तु तारू शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

मतलब- हे कृष्ण, अगर तुम मुझे कुछ देना चाहते हो तो हमेशा दुख देते रहना।

इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि लोग मुझ से धन, संपत्ति, पुत्र, पद और सम्मान वगैरह मांगते हैं, तुम क्यों दुख मांग रही हो?

इस पर कुंती ने कहा कि जब मनुष्य धन, संपत्ति, पुत्र, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करता है तो जीवन भर इसके चक्कर में पड़कर सुख-दुख भोगता रहता है और कभी इस चक्कर से मुक्त नहीं हो पाता। वहीं दुख के समय केवल भगवान ही याद आते हैं। कन्हैया मुझे दुख इसलिए पसंद है कि

तुम हमेशा याद आते रहोगे।

भगवान के अनुसार उनकी कृपा इस चीज में है कि व्यक्ति भगवान को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़े जबकि हमारी परिभाषा के अनुसार भगवान की कृपा का मतलब है कि भौतिक चीजों का जमावड़ा बढ़ता रहे। इसी अज्ञानता के कारण दुख आने पर हम भगवान को कोसते हैं।

भगवान हम सबके अनंत जन्मों के पाप और पुण्य कर्मों का हिसाब रखते हैं इसलिए प्रारब्ध वश (प्रारब्ध का मतलब है हमारे पुराने अनगनित जन्मों के पापों में से जो हमें इस जन्म में दुख के रूप में भोगने हैं) जब हम दुख में होते हैं तो वह किसी पुराने बचे हुए पाप के अकाउंट को क्लियर कर रहे होते हैं। वह एक न्यायाधीश की भूमिका निभाते हैं जो केवल हमारे अच्छे और बुरे कर्मों का न्याय करता है। अगर जज किसी अपराधी को उसके गलत काम के लिए दंड देते हैं तो अपराधी को जज से नफरत रखने का अधिकार नहीं होता। उन्होंने तो कानून के अनुसार सिर्फ न्याय किया है।

वेद के अनुसार -

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्

(वेदान्तसूत्र 2.1.34)

जिसका मतलब है कि भगवान किसी भी जीव के प्रति पक्षपात नहीं करते। इंसान अपने कर्मों के लिए खुद जिम्मेदार है।

दूसरा यह भी कि भगवान मोह, आसक्ति जैसे विकारों से ऊपर हैं। उदाहरण के तौर पर अगर किसी नवजात बच्चे की जन्म के समय ही मौत हो जाये तो हम लोग विचलित हो जायेंगे लेकिन भगवान उस जीवात्मा को किसी पुराने जन्म के पाप का न्याय उसे देते हैं इसलिए वे तठस्थ रहते हैं और हमें लगता है कि भगवान अन्याय कर रहे हैं। यही सबसे बड़ा भेद है।

जहाँ तक बात संसार को बनाने के कारण की है तो अब तक मेरी बुद्धि भी संसार के बनने के असली कारण को लेकर कोई खास ज्ञान अर्जित नहीं कर पाई है। वेद भी इस मामले में मेरी बात का समर्थन करता है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त ब्रह्मांड विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति से संबंधित है। माना जाता है कि यह सूक्त ब्रह्मांड के निर्माण के बारे में काफी सटीक तथ्य बताता है। इसके दो श्लोकों पर नजर डालते हैं -

को आद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाया को वेद यत आबभूव॥

मतलब - कौन मनुष्य संसार के बनने की असलियत को ठीक-ठीक जानता है और इसके मूल कारण को बता सकता है (मतलब कोई नहीं जानता)। देवता भी इस संसार के बनने से बाद के हैं इसलिए वे भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते। इसलिए कोई नहीं बता सकता कि किस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद॥

मतलब - इस दुनिया का जो स्वामी ईश्वर है, वह आनंद स्वरूप परमात्मा ही संसार के बनने के निमित्त कारण को जानता है, उसके अलावा इस रहस्य को कोई नहीं जानता।

वेद स्पष्ट कह रहा है कि सिर्फ भगवान ही इस दुनिया की रचना का कारण जानते हैं इसलिए अपना दिमाग मत लगाओ क्योंकि तुम अपनी सीमित बुद्धि से संसार के बनने के कारण को नहीं जान पाओगे। लेकिन चूंकि हम लोग जरा ढीठ हैं इसलिए कोशिश तो फिर भी करेंगे।

दरअसल वेद के ही अनुसार जीव और परमात्मा दोनों नित्य, सनातन हैं मतलब दोनों का अस्तित्व हमेशा से है। अब ये 'सदा से' का मतलब क्या होता है यह अपने आप में एक रहस्य है? सदा से है तो कितने सालों से है, कुछ समय की सीमा तो होगी। 'सदा से' का मतलब यह है कि हमारा और भगवान का अस्तित्व तब से है जब समय भी नहीं था। बार-बार जीवात्मा को अलग-अलग शरीरों में जन्म मिलता है। यह चक्र अनादि काल से चलता आ रहा है और अनंत काल तक चलता रहेगा मतलब इसका कोई ओर-छोर नहीं है। इसी बात में यह तथ्य भी छुपा हुआ है कि भगवान संसार क्यों बनाते हैं और हमें उसमें क्यों भेजा जाता है?

इंसान के बार-बार अलग-अलग योनियों के शरीर धारण करने का चक्र तब तक चलता है जब तक वह भगवद्प्राप्ति नहीं कर लेता। संसार की रचना करके और हमें उस संसार में भेज कर भगवान हमें बार-बार यह अवसर देते हैं कि अपने विवेक का इस्तेमाल कर हम यह महसूस करें कि जन्म और मरण का यह चक्कर दुखों से भरा है और इससे मुक्ति केवल भगवद्प्राप्ति पर ही संभव है। भगवान को सदा आनंदमयी माना जाता है और संसार में हमें भेज कर और कर्म करने का अधिकार देकर वह हमें उस आनंद को प्राप्त करने का मौका देते हैं।

हम संसार में आम तौर पर देखते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपना सारा कमाया हुआ पैसा और संपत्ति सिर्फ अपने ऊपर खर्च नहीं करता। वह अपनी संतान और परिवार के लिए एक बड़ा भाग बचा के रखता है। इसी प्रकार हम जीवात्मा रूप में परमात्मा के ही बच्चे हैं और हमारा पिता और हितैषी होने के नाते वह हमेशा चाहते हैं कि उनके अनंत मात्रा के आनंद में से हमें भी वो आनंद प्रदान कर दें। इसीलिए हमें इस संसार में भेज कर वह हमें यह मौका देते हैं।

अब एक सवाल यह उठता है कि अगर भगवान संसार बनाकर प्राणियों को भगवद्प्राप्ति करने का अवसर देते हैं तो सभी जीवों को सीधा अपना परमानंद क्यों नहीं दे देते? अगर वह परम दयालु हैं तो यह सब जन्म मरण का नाटक क्यों?

ऐसा इसलिए है कि एक काबिल अभिभावक होने के नाते भगवान हमें मार्ग दिखाते हैं और हमें प्रेरणा देने के लिए अपने संत भेजते हैं, पर उस मार्ग पर चलना या न चलना वह हम पर छोड़ते हैं। आप भी अपने बच्चों की परीक्षाओं के समय तैयारी में उनकी सहायता करते होंगे पर उनकी जगह पर परीक्षा तो देने नहीं जाते। कुछ काम व्यक्ति को खुद अपनी मेहनत से करने पड़ते हैं। इसलिए भगवान भी रास्ता दिखाने के लिए हमारे साथ तो चलते हैं पर हमारे स्थान पर खुद यह यात्रा नहीं करते।

हालांकि एक प्रश्न मेरे दिमाग में फिर भी खटकता है कि पहली बार ही संसार क्यों बनाया गया? अगर संसार बनता ही नहीं तो हमारे कर्मों का बहीखाता भी न बनता। इसका जवाब यही है कि संसार की रचना अनादि काल से होती आ रही है और ईश्वर के अतिरिक्त उस काल की परिधि

को कोई नहीं जानता। इसलिए जहाँ बात बुद्धि की सीमा से परे हो जाये तो वहां वेद की बात के आगे आत्मसमर्पण कर देना ही बेहतर है। फिर भी अगर कोई ज्ञानी व्यक्ति इस बात का रहस्य जानता हो तो मेरी नॉलेज बढ़ाने का कष्ट करें।

सब लिखा है तो कर्म का झमेला क्यों

पोथी तेरी, सत्ता तेरी
बस कर्म की जंजीरें मेरी
तू ही जग में लेकर आया
उस पर बैठी तेरी माया
आगा पीछा सब जाने तू
दोषी मुझको फिर माने क्यूं
करे न्याय यदि तो ऐसा कर
माया को भेज दे अपने घर
फिर कर्म करूंगा मैं विशुद्ध
पोथी तेरी हो जाए शुद्ध
हो जाऊंगा तेरे सन्मुख़
फिर चाहे दे पीड़ा या सुख

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.26)

मतलब - हे अर्जुन, भगवान होने के नाते मैं जो कुछ भूतकाल में घटित हो चुका है, जो वर्तमान में घटित हो रहा है और जो आगे होने वाला है, वह सब कुछ जानता हूँ। मैं समस्त जीवों को भी जानता हूँ, लेकिन मुझे कोई नहीं जानता।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि इस संसार में जो कुछ भी हो चुका है, हो रहा है या होने वाला है, वह सब जानते हैं। इसको देखने का एक नजरिया है कि सब कुछ नियति (किस्मत) द्वारा निर्धारित है। मतलब अगर सब कुछ भगवान के ही निर्देश पर होता है तो इतने झंझट पालने की क्या जरूरत है? जो होना होगा वह तो होगा ही। हम सब इतनी मेहनत और जद्दोजहद क्यों करें? भगवान और संत जो उपदेश देते रहते हैं कि निष्काम कर्म करो तो वह सब तो बकवास है। अगर सब कुछ किस्मत द्वारा निर्धारित है तो हमें वह चीज मिलने से कोई नहीं रोक पाएगा और अगर किस्मत में नहीं है तो हमारे मेहनत करने के बाद भी वह चीज हमें नहीं मिलेगी । लोगों की एक अच्छी खासी तादाद ऐसा ही सोचती है। वे लोग वेद, उपनिषद वगैरह के उपदेशों का यह कह कर मखौल उड़ा देते हैं कि भगवान ने जो लिखा होगा वह तो होगा ही, तो हमें कर्म क्यों करना है?

यह थ्योरी इतनी सरल नहीं है। एक कहानी के द्वारा इस बात को समझने की कोशिश करते हैं।

एक जंगल में एक महात्मा निवास करते थे। जंगल के दोनों तरफ दो अलग-अलग राज्य थे। दोनों ही राजा महात्मा के पास आशीर्वाद और सलाह के लिए आया करते थे। जंगल के बीच में से एक नदी बहती थी जिसे लेकर दोनों राज्यों में तनातनी रहती थी। कुछ समय बाद यह तनातनी युद्ध की स्थिति तक पहुंच गई। दोनों ही राजाओं ने युद्ध से पहले महात्मा से आशीर्वाद लेने की सोची।

पहला राजा महात्मा के पास गया और सारी बात बताकर आशीर्वाद मांगा।

महात्मा ने थोड़ा सोच कर कहा -"भाग्य में तो जीत नहीं दिखती, आगे हरि इच्छा।"

यह सुनकर राजा थोड़ा विचलित हुआ लेकिन फिर सोचा कि यदि ऐसा है तो खून की आखिरी बूंद भी बहा देंगे लेकिन जीते जी तो हार नहीं मानेंगे। उसने वापस लौटकर जोर-शोर से युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। उधर दूसरा राजा भी महात्मा के पास आशीर्वाद लेने के लिए पहुंचा।

महात्मा ने हंसते हुए कहा - "भाग्य तो तुम्हारे ही पक्ष में लगता है।"

यह सुन कर वह खुशी से भर उठा।

वापस लौट कर सभी से कहने लगा - " चिन्ता मत करो, जीत हमारे भाग्य में लिखी है।"

युद्ध का समय आ पहुंचा। दूसरा राजा जीत का सपना लिए अभी निकला ही था कि उसके घोड़े के एक पैर की नाल निकल गई। घोड़ा थोड़ा लड़खड़ाया तो मंत्री ने कहा - "महाराज, अभी तो समय है। घोड़े की नाल लगवा लेते हैं या घोड़ा बदल लेते हैं।"

लेकिन राजा बेपरवाही से बोला - "अरे जब जीत अपने भाग्य में निर्धारित है तो फिर ऐसी छोटी सी बात की चिंता क्यों करते हो?"

युद्ध शुरू हो गया। दोनों ओर की सेनाएं एक दूसरे से भिड़ गई। जल्द ही दोनों राजा भी आमने सामने आ गए। घनघोर युद्ध छिड़ गया। अचानक एक नाल निकला हुआ घोड़ा लड़खड़ा कर गिर पड़ा और राजा दुश्मन के हाथ पड़ गया। भाग्य ने उसे धोखा दिया।

पहला राजा जीत का जश्न मनाता हुआ महात्मा के पास पहुंचा और सारा हाल बताया। दोनों ही राजाओं के मन में जिज्ञासा थी कि भाग्य का लिखा कैसे बदल गया।

महात्मा ने दोनों को शान्त करते हुए कहा - "अरे भाई, भाग्य बदला थोड़े ही है, लेकिन तुम लोग जरूर बदल गए हो।"

जीतने वाले राजा की ओर देखते हुए महात्मा आगे कहने लगे - "अपनी संभावित हार के बारे में सुनकर तुमने दिन-रात एक करके, सारी सुख सुविधाएं छोड़ कर, खाना, पीना, सोना भूलकर जबर्दस्त तैयारी की और खुद प्रत्येक बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जबकि पहले वही तुम थे जो सेनापति के बल पर ही युद्ध जीतना चाह रहे थे।"

फिर महात्मा बन्दी राजा से बोले - "अभी युद्ध शुरू भी नहीं हुआ था कि तुम जीत का जश्न मनाने लगे। तुम एक घोड़े तक का ध्यान नहीं रख पाए तो भला युद्ध में इतनी बड़ी सेना को कैसे संभालते। दरअसल, तुम लोगों ने अपने कर्मों से अपने व्यक्तित्व को ही बदल डाला तो भाग्य क्यों न बदलता?"

यही भाग्य और कर्म का खेल है। हमारे पुराने कर्म संस्कार, जिन्हें हम भाग्य भी कहते हैं, केवल परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। हमारा जन्म किस देश में, कैसे परिवार में या किस माहौल में होगा यह किस्मत यानी प्रारब्ध से निर्धारित होता है। लेकिन अपने जीवन के दौरान हम शिक्षा में, नौकरी में या व्यवहार में कैसा कर्म करते हैं उसके अनुसार ही हमारे जीवन की दिशा तय होती है। इसलिए कर्म से नहीं बचा जा सकता। कर्म के बारे में भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं -

न कर्मणामारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समाधिगच्छति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.4)

मतलब - इंसान कर्म करना छोड़ भी दे तो भी वह कर्मफल से छुटकारा नहीं पा सकता।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्वशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.5)

मतलब - हर एक व्यक्ति को प्रकृति से मिले गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना पड़ता है, इसलिए कोई भी एक पल भर के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता।

इसलिए कर्म से मुक्ति नहीं है। आप खाली भी बैठ जाएं तो भी मन में विचार चलते रहेंगे इसलिए जबरदस्ती कर्म इन्द्रियों का दमन करके भी कर्म से बचाव संभव नहीं है।

एक और श्लोक पर नजर डालते हैं -

अनासक्तस्य विषयान्यथार्हमुपयुञ्जतः।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

(भक्तिरसामृत सिन्धु 2.255)

जब तक हम इस जगत में हैं तब तक हमें कर्म करना पड़ता है, हम कर्म करना बंद नहीं कर सकते। इसलिए अगर कर्म करके उसके फल भगवान को अर्पित कर दिए जाएं तो यह कर्म युक्त वैराग्य कहलाता है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है कि तीनों लोकों में उनके लिए कोई भी कर्म करना बाध्य नहीं है। न उन्हें किसी चीज की कमी है, न कुछ प्राप्त करने की जरूरत है। फिर भी वह कर्म करना नहीं छोड़ते और नियत कर्म करने के लिए तत्पर रहते हैं।

भगवान अपने आप में परिपूर्ण हैं। उनको कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है और वह हर स्थिति में सदा आनंदमयी हैं। फिर भी वह नियत कर्म करने से परहेज नहीं करते। मर्यादा पुरूषोत्तम राम अवतार में भगवान ने सारी मर्यादाओं का पालन करते हुए चैदह वर्ष का कष्टों से भरा वनवासी जीवन बिताया, अपने जीवन का एक लंबा समय पत्नी सीता के वियोग में ही जिया। श्रीकृष्ण ने जन्म से ही बहुत सी विपत्तियों का सामना करते हुए धरती पर करीब सवा सौ साल का जीवन कर्म करते हुए ही बिताया और अपने कर्म की नियति को भी भोगा। महाभारत युद्ध के बाद दुर्योधन की माता गांधारी ने श्रीकृष्ण को श्राप दे दिया कि यह युद्ध तुम्हारे ही कारण हुआ है और इसलिए भरतवंश की तरह यदुवंश भी खत्म हो जाएगा। श्रीकृष्ण ने किस्मत के इस प्रहार को खुशी-खुशी स्वीकार किया। राम अवतार में भगवान ने छुपकर बाली का वध किया था। इस कृत्य का उधार उन्हें कृष्ण अवतार में चुकाना पड़ा जब एक भील ने श्रीकृष्ण के पैर को हिरण की आँख समझकर बाण से घायल कर दिया था।

जब खुद भगवान अपने को कर्म बंधन में बांधते हैं तो भला हमें इससे मुक्ति कैसे मिल सकती है। भगवद्गीता का भी सार जीवन की हर परिस्थिति में दृढ़ रहकर कर्म करते रहना ही है। पुराने जन्मों के कर्म संस्कार से बने प्रारब्ध पर तो हमारा कोई कंट्रोल नहीं, लेकिन आज हम क्या करते हैं, वह हमारे कंट्रोल में है। इसलिए बेहतर यही है कि ऐसे कर्म किये जाएं कि जिससे जो प्रारब्ध आगे बने, वह सात्विक हो और हमें भगवान की तरफ ले जाता हो।

कमज़ोर दिल के भगवान

जिंदगी गुज़र गई तुझे ढूंढने में ऐ ख़ुदा
कभी अंदर झांकने की फुर्सत न मिली

एक बार नारदजी ने श्रीकृष्ण से कहा - "प्रभु, आप बड़ा अन्याय करते हैं, यह ठीक नहीं है।"

श्रीकृष्ण ने हैरानी से पूछा - "वह कैसे देवर्षि?"

नारदजी ने कहा - "वृंदावन की गोपियों ने अपने शरीर तक का मोह छोड़ कर आपसे सबसे ऊंची कक्षा का निष्काम प्रेम किया।"

"हां बिल्कुल किया, यह तो मैं भी जानता हूँ लेकिन आप क्या कहना चाहते हैं?" श्रीकृष्ण ने फिर पूछा।

नारद जी बोले - "तो आप उन सबसे श्रेष्ठ भक्तों का उधार कैसे चुकाते हैं?"

"मैं उन सबको गोलोक में स्थान देता हूँ।" श्रीकृष्ण ने आत्मविश्वास से कहा।

"और आप ने कंस, पूतना, अगासुर जैसे भयंकर राक्षसों को गोलोक में स्थान क्यों दिया?" नारदजी ने हैरानी से पूछा।

श्रीकृष्ण बोले - "कंस के दिमाग में हमेशा मैं ही घूमता रहता था। वह सोते-जागते, खाते-पीते, हर समय डर और दुश्मनी के कारण सब जगह मुझे ही देखता था। और तुम जानते ही हो कि व्यक्ति चाहे जिस भी कारण से मुझे याद करे, मैं उसे स्वीकार करता हूँ। वहीं पूतना ने तो मुझे मां रूप में स्तनपान कराया है, तो क्या अगर वह मुझे विष से भरा दूध पिला रही थी! कुछ देर के लिए ही सही, वह मेरी मां तो बनी ही थी। रही बात अगासुर की, तो उस सांप रूपी राक्षस के मुँह में तो मैं खुद ही चला गया था, उसे तो मेरा लोक मिलना ही था।"

इस पर नारदजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा - "आप से दुश्मनी रखने वाले राक्षसों को आपने दया के कारण गोलोक दिया, यह तो समझ में आता है लेकिन सर्वोच्च कक्षा का निष्काम प्रेम आपसे हमेशा करने वाली गोपियों को भी गोलोक में स्थान? क्या यह सही न्याय है? क्या आप उनके समर्पण भाव का बदला कभी किसी चीज़ से चुका पाएंगे?"

श्रीकृष्ण चुप हो गए। उनके पास नारदजी के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। सकुचाते हुए वह बोले - "नहीं चुका पाऊंगा।"

"तो आप क्या करेंगे?" नारदजी ने पूछा

"हमेशा ऋणी रहूँगा।", श्रीकृष्ण ने कृतज्ञता के भाव के साथ गर्दन झुकाते हुए कहा।

इस घटना से यह पता चलता है कि भगवान इतने दयालु और नरम दिल वाले हैं कि चाहे व्यक्ति उनसे सदा दुश्मनी ही क्यों ना रखे, पर दुश्मनी के कारण भी अगर वह व्यक्ति निरंतर भगवान का स्मरण करता है तो भगवान उसे भी स्वीकार करते हैं। फिर प्रेम भाव से उनका स्मरण करने का तो कहना ही क्या।

भागवत पुराण के अनुसार -

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।।

(श्रीमद्भागवत पुराण 3.2.23)

मतलब - अरे, वह पापी नारी पूतना जो अपने स्तनों पर कालकूट नाम का घोर विष (जहर) लगाकर श्रीकृष्ण को मारने के उद्देश्य से स्तनपान कराती है, उसे भी श्रीकृष्ण वह गति देते हैं जो उन्हें दूध पिलाने वाली माता को मिलनी चाहिए, इससे अधिक दयालु क्या कोई पूरे जगत में हो सकता है?

भागवत के ही एक और श्लोक में बताया गया है -

मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौज

स्तेजः प्रभावबलपौरूषबुद्धियोगाः।

नराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो

भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय।।

(श्रीमद्भागवत पुराण 7.9.9)

मतलब - धन, कुल (वंश), रूप, तपस्या, वैराग्य (त्याग का भाव), ज्ञान, तेज, बल, बुद्धि, योग वगैरह भी ईश्वर की आराधना करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि भगवान तो गजराज पर सिर्फ उसके करूणा भरे आंसुओं से की गई भक्ति से ही खुश हो गए थे।

भगवान कहते हैं कि उनकी तरफ कोई व्यक्ति एक कदम बढ़ाता है तो वह उसकी तरफ दस कदम बढ़ाते हैं। भगवान प्रेम के वश में खुद अपना स्वरूप भी भूल जाते हैं। गोपियां परब्रह्म श्रीकृष्ण को 'चोर जार शिखामणि' यानी चोरों का राजा कहा करती थी और श्रीकृष्ण विभोर हो जाते थे। शबरी (जो एक भीलनी थी) ने चख चख कर झूठे बेर श्रीराम को खिलाए और श्रीराम ने उनका स्वाद अपने साकेत लोक के व्यंजनों से भी श्रेष्ठ बताया। अर्जुन के लिए तो श्रीकृष्ण घोड़ों को हांकने वाले सारथी ही बन गए थे। भगवान आडम्बर, ढोंग, महंगे चढ़ावे वगैरह के भूखे नहीं हैं। वह सिर्फ किसी इंसान के भाव को ग्रहण करते हैं। भगवान को वश में करना तो बेहद सरल है। इसके लिए किसी कठोर तपस्या, व्रत, साधना, नियम वगैरह की जरूरत नहीं है। केवल साफ दिल से निरंतर उनसे प्रेम करना है। हालांकि यह शर्त जरूर है कि वह प्रेम एक छोटे बालक के प्रेम की तरह निश्छल (लाग लपेट से रहित) होना चाहिए। प्रेम की उस खीर में भगवान से किसी इच्छा पूर्ति की अपेक्षा की खटाई न पड़ने पाए, नहीं तो वह खीर खाने लायक नहीं बचेगी।

भगवान के बारे में एक उलझन लोगों के मन में हमेशा रहती है कि 'असली' या 'बड़ा 'भगवान कौन है, राम, कृष्ण, शिव या विष्णु? इस्लाम के अल्लाह असली परमात्मा हैं या ईसाई धर्म के गॉड? क्या भगवान निराकार हैं या साकार? इसके अलावा हिन्दू धर्म में तो 33 करोड़ देवता बताये गए हैं, क्या ये सब भगवान हैं? इन सवालों का सटीक जवाब किसी साधारण दिमाग वाले इंसान के लिए उतना ही मुश्किल है जितना पहली क्लास के एक स्टूडेंट के लिए इंजीनियरिंग का कोई टेक्निकल सवाल। इंसान के हर सवाल की तरह यहां भी वेद के जवाब ने

हमें निराश नहीं किया।

तैत्रेय उपनिषद में एक घटना का जिक्र है जब भृगु और उनके पिता वरूण के बीच ब्रह्म (भगवान) को लेकर एक बातचीत होती है। भृगु जिज्ञासा वश वरूण से पूछते हैं कि ब्रह्म क्या है?

वरुण उत्तर देते हैं -

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति॥

मतलब - जिससे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है। हे भृगु, तू उसी ब्रह्म को जानने का प्रयास कर।

भृगु को समझ नहीं आता कि इस बात का क्या मतलब है? उनकी परेशानी देखकर वरूण उन्हें जवाब जानने के लिए तपस्या करने की सलाह देते हैं। भृगु तपस्या शुरू करते हैं और खुद को सभी जीवों को पोषण देने वाले अन्न के सिद्धांत पर ध्यानमग्न करते हैं। वह महसूस करते हैं कि अन्न ही वह पहला सिद्धांत है जो सभी तत्वों में समाहित है और सबका पोषण करता है। वह अपने पिता के पास जाकर ब्रह्म की यह परिभाषा देते हैं -

'अन्नः ब्रह्म इति व्यजानात्'

मतलब अन्न (अनाज, खाद्यान्न) ही ब्रह्म है।

इस पर उनके पिता उन्हें वापस जाकर तपस्या करने का आदेश देते हैं। इस बार जब भृगु ने तपस्या की तो उन्होंने अपना ध्यान प्राण शक्ति पर लगाया। वह जीवन शक्ति जिसके जरिए हम सब जीवित होने का आभास करते हैं। इसलिए वह जाकर अपने पिता को कहते हैं -

'प्राण ब्रह्म इति व्यजानात्'

मतलब प्राण ही ब्रह्म है।

इस पर भी वरूण उन्हें तीसरी बार तपस्या करने का आदेश देते हैं। भृगु फिर तपस्या करने चले जाते हैं। इस बार वह महसूस करते हैं कि यह मस्तिष्क या मन ही है जो इस जीवन शक्ति का संचालन करता है। यही वह मानसिक स्तर है जो ज्ञान की सभी संवदेनाओं को जगाता है। इसलिए वह जाकर कहते हैं कि मन ही ब्रह्म का स्वरूप है। इस पर भी वरुण संतुष्ट नहीं होते। वह भृगु से कहते हैं कि अभी भी उसका ज्ञान अधूरा है। भृगु चैथी बार तपस्या के लिए जाते हैं। इस बार वह विज्ञान यानी आत्मा के तत्व पर अपना ध्यान लगाते हैं। इस पर भी भृगु को ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। वह पांचवीं बार साधना में चले जाते हैं। अनेक कठिनाइयों के बावजूद वह अपनी तपस्या में स्थिर रहते हैं। लगातार साधना करते रहने से उनमें ज्ञान की अंतिम लौ जल उठती है और वह जान जाते हैं की ब्रह्म की वास्तविक पहचान क्या है। वह जाकर अपने पिता को प्रणाम करते हैं और आत्मविश्वास के साथ कहते हैं -

'आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्।'

मतलब आनन्द ही ब्रह्म है।

यही भगवान या ब्रह्म की असली परिभाषा है। भगवान आनंद है। भगवान आनंद की अंतिम से अंतिम सीमा है। इतना आनंद कि अगर जीव को मिल जाये तो सदा सदा के लिए फिर व्यक्ति को जन्म-मरण के दुख को नहीं भोगना पड़ता। वह आत्मा के परमानंद के उस शिखर पर पहुँच जाता है जहाँ से कभी पतन नहीं होता। और ऐसा नहीं है कि मैं केवल अलंकारों के द्वारा सजाई गई एक काल्पनिक स्थिति के बारे में बता रहा हूँ। इतिहास में अनेक महापुरुषों ने सच्चाई में इस आनंद को प्राप्त किया है। इस युग में ही गोस्वामी तुलसीदास, गुरु नानक देव, संत तुकाराम, शंकराचार्य, माधवाचार्य, मीराबाई, सूरदास, निम्बार्काचार्य जैसे अनेकों संतों ने केवल शुद्ध मन से किये गए भगवद्प्रेम से उस सबसे ऊंची स्थिति को प्राप्त किया जिसे बड़े-बड़े तपस्वी, योगी, ज्ञानी वगैरह भी नहीं प्राप्त कर पाते।

पर यह आनंद कैसा है, कितनी मात्रा में मिलता है और कब तक रहता है? हम लोगों को बहुत सी चीजों में आनन्द मिलता है जैसे कि स्वादिष्ट भोजन खाने में, अपने परिजनों के साथ समय बिताने में, अपने मनपसंद स्थान पर घूमने फिरने में या गहरी नींद सोने में। क्या वह आनंद जिसका नाम ब्रह्म या भगवान है, इन सब आनंद के पैमानों से ज्यादा है? वेद कहता है कि जिस प्रकार का आनंद या सुख हमें किसी सुखद परिस्थिति में कुछ पलों के लिए होता है उसका अनंत गुना सुख, भगवान को प्राप्त कर लेने पर जो प्रेमानंद मिलता है, उसमें होता है। भगवान वह आनंद है जो एक बार जीव को प्राप्त हो जाए तो यह कभी खत्म नहीं हो सकता मतलब यह नित्य है। इस आनंद की मात्रा इतनी अधिक है कि इसका एक अंश मात्र भी हमारा प्राकृत शरीर सह नहीं पाएगा। यह आनंद दिव्य है मतलब पंच महाभूतों की सीमाओं से परे है।

अब वेद के अनुसार भगवान की कुछ दूसरी परिभाषाएं समझते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार -

एस आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको।

विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो॥

मतलब - भगवान के अनंत गुण हैं लेकिन उनमें से आठ गुण प्रमुख हैं। उनमें से भी सबसे प्रमुख गुण है सत्य संकल्प मतलब जो सोचा जाए वह हो जाए। भगवान सिर्फ अपनी संकल्प शक्ति से इतने विशाल ब्रह्मांड की रचना कर देते हैं। इसी तरह समय आने पर इसी संकल्प शक्ति से वह इस संसार को अपने में लीन भी कर लेते हैं।

इसके अलावा भगवान के कुछ और प्रमुख गुण हैं जैसे कि भगवान सर्वज्ञ हैं मतलब केवल भगवान को ही अपना ज्ञान है। उनके अलावा उनको कोई नहीं जानता पर वह सबको जानते हैं।

भगवद्गीता के उपदेश में श्रीकृष्ण ने इस पर मोहर भी लगायी है -

वेदांह समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.26)

मतलब - हे अर्जुन, भगवान होने के नाते मैं, जो कुछ भूतकाल में घटित हो चुका है, जो

वर्तमान में घटित हो रहा है और जो आगे होने वाला है, वह सब कुछ जानता हूँ। मैं समस्त जीवों को भी जानता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं जानता।

इस पूरे जगत में करोड़ों ब्रह्मांड हैं। कहा जाता है कि धरती पर रेत के कण गिने जा सकते हैं पर आकाश में ब्रह्मांड नहीं गिने जा सकते। अब विज्ञान भी मल्टीवर्स (एक से अधिक यूनिवर्स) की थ्योरी पर विश्वास करने लगा है। इन सभी ब्रह्माण्डों में करोड़ों आकाशगंगायें हैं। अब जरा इसी से ईश्वर की शक्ति का अंदाजा लगाते हैं। करोड़ों आकाशगंगाओं के अनंत सौर मंडलों की अनंत पृथ्वियों के अनंत देशों के अनंत शहरों के अनंत कस्बों में अनगिनत प्राणी हैं। इन सभी प्राणियों के अनंत जन्मों में से हर जन्म के एक एक सेकेंड के पाप-पुण्य कर्मों का वह एक भगवान हिसाब रखते हैं। क्या ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को कोई भी सामान्य बुद्धि वाला इंसान समझ सकता है?

भगवान सर्वशक्तिमान (सबसे शक्तिशाली) हैं, यानी उनसे अधिक और उनके बराबर भी कोई शक्तिमान नहीं। उनकी शक्ति और चेतना से ही यह सारा चराचर जगत चलायमान है। उन्हीं की शक्ति से असंख्य ग्रह तारे वगैरह आकाश में बड़े नियम से चक्कर लगाते हैं। भगवान की चेतना शक्ति से ही यह प्रकृति इतने नियम से चलती है। भगवान की ही एक शक्ति माया के अधीन होकर हम संसार में अपना मन लगाते हैं और इसी में बंधत्व का अनुभव करते हैं।

हम साधारण बुद्धि वाले लोग हैं। अगर हमें कोई एक छोटी सी गाली भी दे दे तो हम आग बबूला हो उठते हैं और सामने वाले व्यक्ति से झगड़ा करने को तैयार हो जाते हैं। जबकि कड़वा सच यही है कि हम में से हर व्यक्ति अनगनित विकारों और अवगुणों से युक्त है। हमें गुस्सा भी आता है, हम पैसा जोड़ने में भी थोड़ा बहुत कपट कर बैठते हैं, हमें परिवार और ऐशो-आराम के प्रति आसक्ति भी है। हम किसी भी विकार से अछूते नहीं हैं। लेकिन भगवान इन विकारों से परे हैं इसलिए वह परम दयालु हैं। इसी दया और करूणा के कारण वह हमें मनुष्य जीवन देकर भगवद्प्राप्ति करने का मौका देते हैं और इसी दया के कारण हमारे अनगनित जन्मों के अनगिनत पाप होते हुए भी सिर्फ हमारी भक्ति के कारण हमें अपना परम आनन्द प्रदान कर देते हैं।

हमने यह तो जान लिया कि भगवान नित्य है, अजन्मा है, अविनाशी है, सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है व सर्वशक्तिमान है। लेकिन यह प्रश्न अभी तक अनसुलझा है कि भगवान कौन हैं? भगवान का स्वरूप क्या है? क्या वह इस्लाम, अद्वैतियों (अद्वैती वे लोग हैं जो आदि शंकराचार्य के निराकार ईश्वर की थ्योरी के अनुसार साधना करते हैं) वगैरह का निराकार ईश्वर है या रसिक संतों (तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास जैसे साकार भगवान की आराधना करने वाले संत) का साकार परब्रह्म?

अल्लाह, परमात्मा, गॉड, ब्रह्म वगैरह सब एक ही भगवान के अलग-अलग मतों और संप्रदायों में अलग-अलग नाम हैं। हर संप्रदाय इस बात को तो स्वीकार करता ही है कि ईश्वर एक है और वह सर्वशक्तिमान है। इसलिए, उन सब में अनेक मतभेद होते हुए भी हर एक के अनुसार आखिरी मंजिल ईश्वर ही है। फिर भी इतने मतों और मतभेदों के होने का एक बड़ा कारण है। बात यह है कि पुराने समय से वेद भगवान से निकला हुआ विशुद्ध ज्ञान था। लेकिन यह ज्ञान इतना

गूढ़ था कि समय के साथ लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि, विवेक और रूचि आदि के कारण वेद की बातों के अपनी-अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग मतलब निकाल लिए। उदाहरण के तौर पर जीव और भगवान के बीच में कुछ समानताएं होने के कारण वेद में कुछ जगहों पर जीव को ही ब्रह्म की संज्ञा दे दी गई। इसी बात को पकड़ कर कुछ दर्शनों और सम्प्रदायों ने 'अहम् ब्रह्मास्मि (मैं ही ब्रह्म हूँ)' का इतना प्रचार किया कि कुछ सन्यांसी अपने को खुद भगवान ही मान बैठे। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि जीव में वो सारी शक्तियां हों जो ब्रह्म (भगवान) में हैं। जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद दोनों का संबंध है। इसी तरह कुछ लोगों ने भगवान के निराकार होने के भाग को पकड़ कर प्रचारित कर दिया तो कुछ ने साकार होने को। हालांकि सच यह है कि ईश्वर भौतिक तत्वों जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि की सीमाओं से परे हैं इसलिए वह अगर कोई रूप धारण भी करते हैं तो वह रूप भौतिक होने की बजाय दिव्य और हमारी बुद्धि से परे होता है।

क्या आपके अंतर्मन, बुद्धि और चेतना शक्ति का कोई आकार है? आप यही कहेंगे न कि बुद्धि या मन का आकार कैसे हो सकता है। ठीक है मान लिया। अब यह सोचिये कि क्या इन मन, बुद्धि, अंहकार आदि का धारक (यानी आप) निराकार है या साकार? आप कहेंगे कि हम तो साकार व्यक्तित्व हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि आप एक साकार, सगुण इंसान हैं जिसकी कुछ शक्तियां निराकार हैं पर उनके अस्तित्व को नहीं झुठलाया जा सकता। इसी प्रकार जिस ब्रह्म को निराकार माना जाता है वह उस साकार, सगुण, सविशेष भगवान की दिव्य शक्ति और चेतना है। इसलिए हम सामान्य लोगों के लिए बेहतर यही है कि ईश्वर के स्वरूप के विवाद में अपनी सीमित बुद्धि को न लगा कर केवल मन की श्रद्धा से भगवान के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया जाए।

लेकिन एक बात सोचने लायक है कि हम लोग एक साकार शरीर को धारण किए हुए हैं और साकार संसार को ही देखते और भोगते हैं। इसलिए हमारे लिए किसी निराकार, निगुर्ण रूप की कल्पना और आराधना करना बेहद मुश्किल है। इसी को सोच कर अनेकों धर्मग्रन्थ और संतों ने परमात्मा के सगुण, साकार रूप से ही प्रेम करने को श्रेष्ठ बताया है। ऐसा साकार परमात्मा जिसके स्वरूप और विशेषताओं को हमारी बुद्धि और मन ग्रहण कर सकें।

भगवद्गीता उपदेश के दौरान अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा -

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 12.1)

मतलब - जो आपके साकार रूप की सेवा करते हैं या जो निराकार ब्रह्म की पूजा करते हैं, इन दोनों में से किसे अधिक श्रेष्ठ माना जाए।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 12.2)

मतलब - जो लोग अपने मन को मेरे साकार रूप में एकाग्र करते हैं और श्रद्धा से मेरी पूजा करने में हमेशा लगे रहते हैं, वे मेरे द्वारा परम सिद्ध माने जाते हैं।

यहां श्रीकृष्ण बता रहे हैं कि जो भक्त उनके साकार रूप में निरंतर मन को लगा कर रखते हैं वे उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय हैं। हालांकि इसी अध्याय के अगले श्लोक में श्रीकृष्ण ने यह भी स्पष्ट किया है कि जो लोग उनके अव्यक्त, अकल्पनीय और निराकार ब्रह्म स्वरूप में मन को स्थिर करते हैं वे भी आखिरकार उन्हीं को प्राप्त करते हैं। पर सोचने वाली बात यह है कि जिसका न कोई आकार हो, न कोई स्वरूप, न विशेषताएं वगैरह, उसमें निरंतर मन को लगाए रखना कैसे संभव है? अगर असंभव नहीं भी हो तो हम साधारण लोगों के लिए बेहद मुश्किल जरूर है। एक बिंदु का भी आकार होता है लेकिन निराकार का नहीं। दूसरी बात यह कि निराकार ईश्वर की उपासना, जिसे ज्ञानयोग कहा जाता है, उसमें एक बहुत बड़ी कमी है। वह कमी है कि ज्ञानी उपासक जैसे-जैसे ज्ञान मार्ग पर आगे बढ़ता है उसके अंदर अहंकार होने की संभावना बढ़ती जाती है जबकि भक्तिमार्ग में व्यक्ति खुद को दीन मान कर और शरणागत होकर आगे बढ़ता है इसलिए वहां अहंकार उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती। मन में थोड़ा भी अहंकार का रहते हुए भगवान को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक बात राम, कृष्ण, विष्णु, शिव वगैरह में से भगवान को पहचानने की है तो ये सब एक ईश्वर के ही विभिन्न अवतार रूप हैं। कोई गुणावतार है, कोई पुरुषावतार, कोई कल्पावतार तो कोई युगावतार। और वेद और पुराणों के अनुसार भगवान और उनके अवतारों में कोई भेद नहीं होता।

पर एक भेद जरूर है। भागवत पुराण, ब्रह्म संहिता, भगवद्गीता, भक्ति रसामृत सिंधु जैसे ग्रंथों और सबसे ऊंची गतियों को प्राप्त कर चुके महापुरुषों जैसे वेदव्यास, शुकदेव, नारद, सनत्कुमार, सूरदास, तुलसीदास, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि ने बताया है कि श्रीकृष्ण जो अपने वास्तविक दिव्य स्वरूप में गोलोक धाम में निवास करते हैं, वही परब्रह्म हैं और सभी चर-अचर जगत के स्रोत हैं। कुछ लोग यह सवाल उठा सकते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास तो श्रीराम के भक्त थे। इसे हमारा भोलापन ही कहा जायेगा। विनय पत्रिका में खुद तुलसीदास ने श्रीराम को माधव कह कर पुकारा है जबकि माधव श्रीकृष्ण को कहा जाता है। इसका कारण है कि श्रीकृष्ण ही त्रेतायुग में श्रीराम रूप में अवतार लेते हैं।

ब्रह्म संहिता में कहा गया है -

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दः विग्रहः।

अनादिरादि गोविन्दः सर्व कारण कारणमः॥

(ब्रह्म संहिता 5.1)

मतलब - ब्रह्मा जी कहते हैं कि भगवान तो कृष्ण हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उनका कोई आदि नहीं है। वे समस्त कारणों के कारण हैं।

भागवत पुराण में भगवान शिव ने कहा है कि जो व्यक्ति हर किसी के अधिष्ठाता (स्वामी) भगवान कृष्ण के शरणागत हैं, वे वास्तव में मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं।

भगवद्गीता में खुद श्रीकृष्ण ने कहा है -

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 10.8)

मतलब - मैं सभी आध्यात्मिक और भौतिक जगतों का कारण हूँ। सब कुछ मुझसे ही उत्पन्न होता है।

वराह पुराण भी इन बातों का समर्थन करता है -

नारायणः परो देवस्तस्माज्जातश्चतुर्मुखः।

तस्माद्रूद्रोऽभवद्देवः स च सर्वज्ञतां गतः॥

जिसका मतलब है कि नारायण भगवान हैं, जिनसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए और फिर ब्रह्मा से शिव उत्पन्न हुए। भगवान कृष्ण समस्त उत्पत्तियों के स्रोत हैं। नारायण कृष्ण के ही अंश हैं।

भगवद्गीता के कुछ और श्लोक देखते हैं -

आदिव्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।

(श्रीमद्भगवद्गीता 10.21)

मतलब - मैं आदित्यों में विष्णु हूँ

रूद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यथरक्षसाम्।

(श्रीमद्भगवद्गीता 10.23)

मतलब - मैं समस्त रूद्रों में शिव हूँ

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।

(श्रीमद्भगवद्गीता 10.31)

मतलब- शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ

अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।

(श्रीमद्भगवद्गीता 10.33)

मतलब - मैं ब्रह्मा रूप में सृष्टि की रचना करता हूँ

इन सभी श्लाकों में श्रीकृष्ण ने साफ साफ बताया है कि वही परम ब्रह्म हैं और सारे संसार को बनाने वाले भी वही हैं। वही कारणोदकशायी विष्णु के रूप में अपने भीतर सारे ब्रह्मांडों को धारण करते हैं और उनके हर श्वास के साथ करोड़ों ब्रह्मांड बनते और नष्ट होते रहते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में वह हर ब्रह्मांड में स्थित होकर उसे जीवन प्रदान करते हैं। इन्हीं गर्भोदकशायी

विष्णु की नाभि से हर एक ब्रह्मांड के ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। क्षीरोदकशायी विष्णु रूप में वह हर जीव के हृदय में और संसार के हर अणु में परमात्मा रूप में स्थित होकर संसार का पालन करते हैं।

इसकी पुष्टि ब्रह्म संहिता ने भी की है -

यः कारणर्णवजले भजति स्म योगनिद्राम्

(ब्रह्मसंहिता 5.47)

मतलब - सब चीजों के कारण भगवान कृष्ण महाविष्णु के रूप में कारणार्णव (एक प्रकार का सागर) में शयन करते हैं। इसलिए वही इस ब्रह्मांड के आदि कारण, पालक और संहारक है।

कुछ तार्किक लोग यह सवाल उठा सकते हैं कि इस नज़रिए से तो श्रीकृष्ण ब्रह्मा, विष्णु और शंकर से श्रेष्ठ हैं। लेकिन सच यह है कि भगवान और अवतारों में कोई भेद नहीं होता। वह एक ही शक्ति के विभिन्न स्वरूप हैं। उनके बीच में भेद करना और किसी को दूसरे से बड़ा या छोटा मानना बहुत बड़ा अपराध है जिसे खुद भगवान भी माफ नहीं करते। शिवपुराण में ब्रह्मा जी नारद से कहते हैं कि जो मुझमें, नारायण में तथा शंकर में अंतर मानता है वह दुख पाता है क्योंकि वे अलग नहीं हैं, एक ही हैं।

दरअसल अलग अलग पुराणों में अलग अलग व्यक्तित्वों को सुप्रीम गॉड कहने से ये सब मतभेद उत्पन्न होते हैं। भागवत पुराण कृष्ण को सुप्रीम बताता है, शिव पुराण शिवजी को और देवी भागवत पुराण शक्ति को सुप्रीम भगवान बताता है। हालांकि बात यह है कि वेद का अंतिम सत्य एक ही है कि भगवान एक है और भगवान और उनके अवतारों में भेद नहीं किया जाता। माधवाचार्य ने विष्णु तत्व निर्णय में भी यही कहा है कि भगवान के विषय में वेद सिर्फ एक ही निष्कर्ष पर पहुँचता है। पुराणों के अलग अलग मत बताने का मकसद यह है कि संसार में सभी लोग सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण के अलग अलग प्रभाव में जीते हैं। किसी इंसान में सात्विक प्रकृति की अधिकता होती है, किसी में राजस और किसी में तामस प्रकृति की। और उन्हीं प्रकृतियों के हिसाब से वे लोग अलग गुणों के अधिष्ठाता देवों की आराधना करते हैं। इसलिए हर व्यक्ति की उन्नति के लिए अलग अलग पुराण उसकी प्रकृति के हिसाब से मार्ग दिखाते हैं।

जहां तक बात देवताओं की है, तो वे सिर्फ संसार के संचालन में सहयोग करने की जिम्मेदारी सँभालते हैं। इन्द्र, सूर्य, वरूण, यम, कुबेर जैसे देवताओं को प्रकृति को सुचारू रूप से चलाने के लिए विशेष शक्तियां व दायित्व दिए गए हैं। इसलिए ये सभी आदरणीय हैं लेकिन जहां तक भक्ति करने की बात है तो वह सिर्फ भगवान की, उनके अवतारों की या उन्हें प्राप्त कर चुके संतों की करनी चाहिए, किसी और की नहीं। इसका कारण यह है कि भगवान कहते हैं कि मुझसे अनन्य भाव (सिर्फ भगवान से मन का लगाव रखना) से प्रेम करो। अनन्य भक्ति का मतलब है कि अपने माता, पिता, पति, पत्नी, भाई, बहन, दोस्त वगैरह में आसक्ति न रख कर केवल भगवान के प्रति ही मन का लगाव हो। यहां एक वाजिब सवाल यह उठाया जा सकता है कि माँ-बाप, पति, पत्नी वगैरह से प्यार और लगाव नहीं रखेंगे तो संसार में जियेंगे कैसे? क्या सब लोग सन्यासी और बाबा बन जाएं? मैं आपको सन्यासी बनने को नहीं कहता। भगवान के प्रति अनन्य

भाव का यह मतलब नहीं कि अपने सांसरिक रिश्तों को त्याग दिया जाए बल्कि अनन्य भक्ति का मतलब है कि हम लोग अपनी सभी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियां पूरी ईमानदारी और निष्ठा से निभाएं लेकिन किसी भी रिश्ते में आसक्त न हो जाएं, आसक्ति सिर्फ भगवान में हो। मैं जानता हूँ यह कहना बड़ा आसान है और करना उतना ही मुश्किल। पर भगवान तक पहुँचने का तरीका तो यही है। अनन्य भाव का पालन करने का एक तरीका यह हो सकता है कि शरीर के द्वारा (यानी बाहरी तौर पर) आप अपने रिश्तेदारों से सारे भाव और प्रेम की भावनाएं व्यक्त करें लेकिन अपने मन और आत्मा की गहराई में असली लगाव केवल परमात्मा से रखें। यही अनन्यता है।

भगवान से अनन्यता कैसे रखी जाती है इसका उदाहरण तुलसीदास के जीवन की इस घटना से मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली से बहुत प्यार करते थे और उन पर बहुत अधिक मुग्ध थे। एक बार तुलसीदास की पत्नी अपने मायके गई हुई थीं। तुलसीदास पत्नी से दूर नहीं रह पा रहे थे। उन्होंने अपनी पत्नी से मिलने का फैसला किया। मूसलाधार बारिश के बीच अँधेरी रात में ही वह उनसे मिलने के लिए चल दिए। उन्होंने सुबह होने का और बारिश के रुकने का इंतज़ार नहीं किया।

चलते-चलते वह एक नदी के पास पहुंच गए। अपनी पत्नी की ही छवि अपने दिमाग में बसाए वह उफनती नदी को तैर कर पार कर गए। इस तरह जब अपनी पत्नी के मायके पहुंचे तो पत्नी या ससुराल वालों को आवाज़ देने की बजाए वो सीधा अपनी पत्नी से ही मिलने के लिए घर की दीवार से ऊपर चढ़ने लगे। दीवार पर एक सांप लटका हुआ था। सांप को देख कर उन्हें रस्सी होने का आभास हुआ और उसी को पकड़ कर घर की छत पर चढ़कर अपनी पत्नी से मिलने जा पहुंचे।

तुलसीदास की पत्नी को अपने पति के इस व्यवहार पर बड़ी हैरानी हुई और मज़ाक के लहज़े में उन्होंने तुलसीदास से ये बातें कहीं -

हाड़ मांस को देह मम, तापर जितनी प्रीति।

तिसु आधो जो राम प्रति, अवसि मिटिहि भवभीति।।

मतलब जितनी आसक्ति तुम्हे मेरे हांड़-मांस के शरीर से है, उसकी आधी श्रद्धा भी अगर तुमने भगवान राम के प्रति रखी होती तो तुम्हारा कल्याण हो जाता और तुम आसानी से भगवान को प्राप्त कर जाते।

तुलसीदास इस बात से बड़े आहत हुए और अचानक ही उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उन पर पत्नी के उलाहने का इतना गहरा असर हुआ कि उन्होंने अपने जीवन की दिशा बदल कर भगवान की तरफ मोड़ दी। इसके बाद उनके मन में राम के प्रति इतनी अनन्यता का भाव पैदा हो गया कि उन्होंने उसी जन्म में भगवदप्राप्ति तो की ही, महान ग्रंथ रामचरितमानस की भी रचना कर डाली।

तुलसीदास की तरह ही वैराग्य तो हम लोगों को भी होता है जब पत्नी, माँ, पिताजी या बच्चों से रखी गई कोई आशा पूरी नहीं होती, लेकिन तुलसीदास और हम लोगों में फर्क यह है कि हम

लोग इतने ढीठ हैं कि दो दिन के बाद फिर से इन्हीं लोगों के प्रति आसक्ति हो जाती है।

मुझे याद है मेरा एक दोस्त शराब के तीन चार पैग पीने के बाद हमेशा यही कहता है - "भाई, बस तू ही मेरा एक भाई है, बाकी सब लोग पत्नी, भाई, मां-बाप सब स्वार्थी हैं।" मैं उसकी बात का कोई जवाब नहीं देता हूँ, केवल मुस्कुरा देता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि नशा उतरने के बाद वह महीने भर तक अपने तथाकथित "भाई" को भूल जाता है।

क्या आप लोगों के साथ भी कभी हुआ है कि आप का मन कुछ समय के लिए अपने परिवार के लोगों या दोस्तों से हट गया हो और आपने ये सोचा हो कि सब बेकार हैं? इसी को क्षणिक वैराग्य कहते हैं जब हमें, कुछ देर के लिए ही सही, मगर यह ज्ञान हो जाता है कि यहां इस संसार में स्थाई सुख तो बिल्कुल नहीं है और जब तक भी है उसमें बहुत सी "शर्तें लागू" लगी हुई हैं। लेकिन हम लोग तो ढीठ हैं, इसलिए लौटा लाते हैं अपने मन को उन्हीं लोगों के पास जिन्होंने वो क्षणिक वैराग्य कराया होता है।

इसलिए कभी न खत्म होने वाले असीम आनंद को प्राप्त करने के लिए हमें भगवान को प्राप्त करना होगा और भगवान को प्राप्त करने के लिए उनकी भक्ति करनी पड़ेगी।

संत का महत्व

मेरी जिंदगी भी क्या थी
काफिर की एक खाली किताब थी
भला हो उस खुदा के बंदे का
जिसने इसमें आयतें लिख दी

गुरुर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।

गुरू साक्षात परब्रह्म तस्मै श्रीगुरूवे नमः।।

मतलब - गुरू ही ब्रह्मा है, गुरू ही विष्णु है और गुरू ही शंकर है। गुरू भगवान के बराबर ही है। उस गुरू को हमारा प्रणाम है।

हम सबने स्कूल में कभी न कभी यह श्लोक जरूर सुना होगा। भारतीय परंपरा में गुरु को भगवान के ही बराबर दर्जा दिया जाता है। इसके अलावा भारतीय सभ्यता में माता को भी शिशु का पहला गुरू माना जाता है। हालांकि वेद के अनुसार गुरू की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी गई है -

'वह जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ है, वही गुरु है।'

श्रोत्रिय का मतलब है जो वेद और पुराणों का पूरा ज्ञान रखता हो। वहीं ब्रह्मनिष्ठ का मतलब है वह महापुरुष जो भगवद्प्राप्ति कर चुका हो।

भगवद्प्राप्त संत के बारे में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है -

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा।

राम ते अधिक राम कर दासा।।

जिसका मतलब है कि राम (भगवान) से भी बड़ा राम का दास (भगवान का भक्त, संत आदि) है।

दरअसल, वेद का ज्ञान इतना अधिक गहन है कि किसी भी इंसान के लिए एक लाइफ में उसके गूढ़ रहस्यों को समझना असंभव है। वेद- उपनिषद के अलावा पुराण, संहिताएं, स्मृतियां, रामायण, महाभारत, काव्य, पत्रिकाएं, भाष्य जैसे शास्त्रों की संख्या इतनी ज्यादा है कि अगर कोई व्यक्ति पक्का निश्चय भी कर ले कि वह अपनी जिंदगी में सिर्फ सभी शास्त्रों को ही पढ़ेगा और कुछ भी अन्य नहीं करेगा तो भी उसके लिए इतने सारे शास्त्रों को पढ़ना तक असंभव है, उनका असली ज्ञान प्राप्त करना तो बहुत दूर की बात है।

तो ऐसा क्यों कहा जाता है कि गुरू वह है जिसे सभी वेद पुराणों का ज्ञान हो। इसका कारण है जब कोई भक्त लगातार साधना करते-करते भगवद्भक्ति की आखिरी सीढ़ी तक पहुँच जाता है और उसका अंतःकरण पूरी तरह शुद्ध हो जाता है तब उसे भगवान की कृपा से भगवद्प्राप्ति हो जाती है। जिस भी भक्त को भगवद्प्राप्ति हो जाती है तो भगवान उसे हमेशा के लिए अपनी बहुत सारी शक्तियां प्रदान कर देते हैं जिनमें से एक है कि उसे सभी वेद शास्त्रों का ज्ञान स्वाभाविक ही हो जाता है। उसे इन्हें पढ़ना नहीं पड़ता। जब कोई संत इस स्थिति पर पहुंच जाता है तो उसे गुरू या महापुरूष की संज्ञा दी जाती है।

इसलिए गुरू वह है जो भगवद्प्राप्ति कर चुका है और जिसे सभी शास्त्रों का ज्ञान हो चुका है। भगवद्गीता उपदेश के दौरान श्रीकृष्ण अर्जुन को गुरु का महत्व बताते हैं -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 4.34)

मतलब - तुम गुरु के पास जाकर सच को जानने की कोशिश करो। उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो। स्वरूप सिद्ध व्यक्ति ही तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने सत्य का दर्शन किया है।

गुरू को वह रास्ता कहा जाता है जिससे होकर व्यक्ति भगवान तक पहुंच सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ने खुद कहा है कि कोई भी व्यक्ति मुझे सीधा प्राप्त नहीं कर सकता। केवल उस गुरू के जरिए, जिसे मैंने अपना दिव्य ज्ञान प्रदान किया है, मैं प्राप्त किया जा सकता हूँ। श्रीकृष्ण ने तो यहां तक कहा है कि मुझमें और गुरू में अंतर नहीं है। जो मुझे प्राप्त करना चाहते हैं वे गुरू में मुझे ही देखें। अगर व्यक्ति एक दिन भी मेरी भक्ति न करे लेकिन हमेशा गुरू के प्रति सच्ची श्रद्धा व भक्ति रखे तो भी वह मुझे ही प्राप्त करता है।

संत कबीर ने गुरु के बारे में कहा है -

गुरू गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।

बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दिया बताय।।

मतलब - गुरू और भगवान दोनों सामने खड़े हों तो गुरू के चरणों में पहले प्रणाम करना उत्तम है जिनकी कृपा से भगवान के दर्शन होते हैं।

गुरू बिन ज्ञान न उपजै, गुरू बिन मिलै न मोष।

गुरू बिन लखे न सत्य को, गुरू बिन मिटै न दोष।।

मतलब - बिना गुरू के ज्ञान का मिलना असंभव है। तब तक मनुष्य अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता हुआ माया के बंधनों में जकड़ा रहता है जब तक कि गुरू की कृपा प्राप्त नहीं होती। मोक्ष का मार्ग दिखलाने वाले गुरू ही हैं। गुरू के बिना उचित और अनुचित के भेद का ज्ञान नहीं होता, फिर मोक्ष कैसे प्राप्त होगा। इसलिए गुरू की शरण में जाओ। गुरू ही सच्ची राह दिखाएंगे।

अब सवाल उठता है कि ऐसे गुरू को कहाँ ढूँढा जाए और उनको पहचानने का तरीका क्या है? भारत में हर शहर में ढेरों संन्यासी, साधु, कथावाचक वगैरह हैं जो अपने-अपने तरीके से ज्ञान और भक्ति का प्रसार करते हैं। मैं सभी का सम्मान करता हूँ और किसी के भी प्रति अपमानजनक नजरिया नहीं रखना चाहता। लेकिन मैं इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि आँख मूँद कर किसी भी संत पर विश्वास कर लेना बेवकूफी है। हमारे देश में हर टी.वी. चैनल पर ज्ञान बांटने वालों की बाढ़ है। हम जैसे सामान्य लोगों के लिए इस भीड़ में सही संत या गुरू की पहचान करना बेहद मुश्किल है। फिर भी नीचे बताई गयी बातों का ख्याल रख कर एक वास्तविक महापुरुष की पहचान की जा सकती है। एक असली गुरू वह है -

- जो कभी शिष्य बनाने के लिए प्रचार-प्रसार नहीं करता। एक वास्तविक महापुरुष को शिष्य की कोई जरूरत नहीं। जरूरत हमें गुरु की है इसलिए वास्तविक गुरु आप को इतनी आसानी से कभी शिष्य नहीं बनाएगा।
- जो हमारी दृष्टि में वास्तविक तत्वज्ञ (जिन्हें वेद, भगवान, जीव, माया वगैरह का ठीक ठीक ज्ञान हो) हो। जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग जैसे साधनों को वेद के अनुसार जानने वाला हो।
- जिनके संग से, बातों से हमारे मन में उठने वाले सवाल बिना पूछे खुद ही दूर हो जाते हों।
- जो हमारे साथ केवल हमारे हित के लिए ही संबंध रखते दिखते हों।
- जिनकी सारी कोशिश केवल साधकों के हित के लिए ही होती हो।
- जो अपनी पूजा या आराधना को कभी न स्वीकार करे और ईश्वर भक्ति करने के लिए ही प्रेरित करे।
- जो पैसा, मान या ऊंचे पद वगैरह की कामना से अपना प्रचार नहीं करे। वास्तविक गुरू कभी अपना प्रचार करता ही नहीं।

अब कुछ सावधानियां भी जान लेते हैं। जो गुरू शिष्यों को अपनी भक्ति करने के लिए प्रेरित करता है या जो लोगों को कर्मकाण्ड या आडंबर जैसी रीतियों के लिए प्रेरित करता है वह तो गुरू नहीं बल्कि अंधविश्वास को बढ़ावा देने वाला एक पाखंडी है। जो लोगों की आस्था के बल पर अपने लिए पैसा या संपत्ति अर्जित करता है वह केवल एक व्यापारी है, गुरू नहीं। जिसने क्रोध और अहंकार जैसे विकारों को न जीता हो, वह तो खुद गुरू की शरण में जाने लायक है। इसलिए पहले यह परख लीजिए कि जिस संत या गुरू के पास आप जा रहे हैं कहीं उसमें ये सब सांसारिक बीमारियां तो नहीं। कहीं आपका गुरू भी ज्ञान के बदले आपसे किसी आर्थिक सहायता या अन्य प्रकार के एहसान की उम्मीद तो नहीं करता?

लेकिन एक बात यह भी है कि हम आम लोगों में यह क्षमता नहीं है कि हम इतने सारे पैमानों पर किसी गुरु की परख कर सकें। हम लोग बहुत से वास्तविक गुरुओं के व्यवहार व आदतों को नहीं समझ पाएंगे। मुमकिन है कि हम ऐसे किसी गुरू के संपर्क में आ भी जाएं तो हमारी परीक्षा लेने के उद्देश्य से वह हमसे विपरीत व्यवहार करें और हम अपने अहंकार में उनसे द्वेष या गलत बर्ताव कर बैठें। इसलिए किसी असली गुरु तक पहुँचने का सबसे अच्छा तरीका है कि भगवान से ही सच्चे मन से प्रार्थना करें कि वह जीवन में हमें किसी सच्चे गुरू से मिलवा दें।

रामायण में जब हनुमान सीताजी को ढूंढने लंका जाते हैं तो वहां उनकी मुलाकात रावण के भाई विभीषण से होती है। हनुमान को देखकर विभीषण कहते हैं -

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहि संता।।

जिसका मतलब है - हे हनुमान, अब मुझे पूरा भरोसा हो गया है कि भगवान की मुझ पर कृपा है, तभी तुम्हारे जैसे संत मुझे मिले हैं।

इसलिए संत या गुरु भगवान् की कृपा से ही मिलेंगे। और जब वह मिल जायेंगे तो खुद ही हमें लक्ष्य तक पहुँचने का रास्ता दिखाएंगे।

दुनिया कैसे बनी

शून्य से संसार बना
और शून्य में ही मिल जायेगा
बाकी जो कुछ है
इन दो शून्यों के बीच है

साइंस कहती है कि ब्रह्मांड का जन्म एक महाविस्फोट के कारण हुआ था। इसी को बिग बैंग थ्योरी कहा जाता है। इस थ्योरी के हिसाब से लगभग बारह से चैदह अरब वर्ष पहले सारा ब्रह्मांड एक परमाण्विक इकाई के रूप में था। एक परमाणु का आकार लगभग 1 मीटर के दस अरबवें हिस्से के बराबर बताया गया है। परमाणु आकार में इतना छोटा होता है कि आंखों से देख पाना तो दूर किसी माईक्रोस्कोप से भी उसको देख पाना संभव नहीं है। ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय मानवीय समय और स्थान जैसी कोई अवधारणा मौजूद नहीं थी। साइंस में जिस स्पेस और टाईम के पैमाने पर सभी भौतिक वस्तुओं का आकार, दूरी आदि मापी जाती है, उस स्पेस (स्थान, आकाश) और टाईम (समय) की शुरूआत ही बिग बैंग से मानी जाती है। बिग बैंग के समय क्या घटना घटी थी, इसका कोई पक्का जवाब साइंस के पास नहीं है, जबकि बिग बैंग से पहले क्या था इसका तो कोई अनुमान भी नहीं है। रिसर्च जारी है, हो सकता है एक दिन साइंस इन सवालों का जवाब ढूंढ निकाले।

साइंस की बिग बैंग थ्योरी में दो बातें ध्यान देने लायक हैं। एक यह कि बिग बैंग से पहले आकाश यानी स्पेस का भी नामो निशान नहीं था, वह सब शून्य में सिमटा हुआ था। और दूसरी बात यह कि जिस शून्य में यह सब केन्द्रित था उसी को साइंस में सिंगुलैरिटी के नाम से जाना जाता है। सिंगुलैरिटी का मतलब है ऐसा शून्य जिसमें अनंत मात्रा का घनत्व और पदार्थ हो, इतना पदार्थ जिससे सारे ब्रह्मांड और और स्पेस-टाईम का निर्माण हो सके। इस विशाल ब्रह्मांड में करोड़ों आकाशगंगाएं हैं। हर गैलेक्सी में करोड़ों ग्रह हैं। सोच कर देखिए अगर यह सारा पदार्थ एक बिंदु के अरबवें हिस्से में समाहित कर दिया जाए तो उसका घनत्व और एनर्जी कितनी ज्यादा होगी।

वेद भी इस बात का समर्थन करता है। विष्णु पुराण के अनुसार यूनिवर्स की रचना को समझने की कोशिश करते हैं। इसके अनुसार संसार की रचना के समय न दिन था, न रात थी, न आकाश था, न धरती थी, न अँधेरा था, न प्रकाश था और न ही इनके अलावा कुछ और था। बस एक प्रधान पुरूष परमेश्वर (भगवान) ही था। इसी परमेश्वर को वह अनंत ऊर्जा की सिंगुलैरिटी माना जा सकता है जिसमें सारे यूनिवर्स का पदार्थ समाहित था और जिसको साइंस अपनी थ्योरी का आधार मानता है।

विष्णु पुराण के अनुसार संसार की रचना के समय भगवान की प्रेरणा से प्रधान और प्रकृति तत्व की उत्पत्ति होती है। इस प्रधान तत्व से महत तत्व बनता है। महत या महान तत्व को प्रधान तत्व ने कवर किया। महत तत्व सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का है। इसी महत तत्व से तीन प्रकार (सात्विक, राजस और तामस) का अहंकार बना। अहंकार चारों ओर से महत तत्व से घिरा हुआ है। तामस अहंकार में विकार होने पर आकाश की रचना हुई। फिर आकाश में विकार होने से वायु की उत्पत्ति हुई। आकाश ने वायु को कवर किया। वायु ने विकृत होकर अग्नि या तेज को बनाया। फिर अग्नि से जल बना। जल ने विकृत होकर पृथ्वी की रचना की। इस प्रकार तामस अहंकार से यह संसार बना।

उसी प्रकार राजस अहंकार से दस इन्द्रियां और सात्विक अहंकार से उनके स्वामी देवता बने। त्वचा, आँखें, नासिका, जीभ, कान ये पांचों ज्ञान इन्द्रियां और हाथ, पैर, मुख, लिंग, गुदायें सभी कर्म इन्द्रियां बनीं।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, धरती इन सभी तत्वों में अलग-अलग शक्तियां हैं इसलिए वे एक दूसरे से मिले बिना संसार की रचना नहीं कर सकते। इसलिए इन सभी विकारों ने आपस में मिल कर प्रधान तत्व की सहायता से एक बहुत विशाल अण्ड की उत्पत्ति की। फिर उसमें भगवान ही हिरण्यगर्भ रूप होकर विराजमान हुए यानी बीज रूप में उसमें स्थित हो गए। यह अण्ड जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश तथा तामस अहंकार से व्याप्त है। यह अण्ड अनन्त है और ऐसे-ऐसे करोड़ों अण्ड स्थित हैं। इन्हीं को करोड़ों ब्रह्मांडों के रूप में जाना जाता है। इन्हीं ब्रह्मांडों में स्थित हुए भगवान खुद ही इस संसार का पालन करते हैं और आखिर में इसे नष्ट कर देते हैं।

भागवत पुराण के अनुसार वह भगवान जो हिरण्यगर्भ नामक अण्ड में स्थित होकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर रूप में सृष्टि का कार्य करते हैं, वही परमेश्वर परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। भागवत के ही अनुसार श्रीकृष्ण से नारायण प्रकट होते हैं। उन्हीं नारायण से उस विराट पुरूष की उत्पत्ति होती है जो प्रधान और प्रकृति तत्वों की रचना करता है। इस रूप को महाविष्णु भी कहा जाता है। फिर यही नारायण या महाविष्णु हर ब्रह्मांड में तीन गुणों के स्वरूप ब्रह्मा (रजोगुण), विष्णु (सतोगुण) और शिव (तमोगुण) का स्वरूप धारण कर संसार का कार्यभार संभालते हैं।

साइंस और वेद की थ्योरी में कुछ समानताएं साफ तौर पर नजर आती हैं। जैसे कि आकाश और समय की उत्पत्ति भी संसार की रचना के समय ही हुई और उससे पहले यह सब उसी सिंगुलैरिटी में स्थित था जिसे वेद में प्रधान तत्व माना गया है और जो भगवान से ही बनता है। एक समानता और है और वह है यूनिवर्स की आयु। साइंस के अनुसार यूनिवर्स की आयु करीब 14-15 अरब वर्ष है। वेद के भी अनुसार यह ब्रह्मा के 51वें वर्ष का पहला दिन चल रहा है और ब्रह्मा की आयु सौ साल होती है। हालांकि यह सौ साल हमारे समय के अनुसार बहुत लंबी अवधि के होते हैं। ब्रह्मा के एक दिन-रात की अवधि पृथ्वी के करीब 8 अरब 64 करोड़ साल होती है। इस हिसाब से 365 दिन का एक वर्ष और ब्रह्मा के 50 वर्ष गिने जाएं तो आंकड़ा बहुत लंबा हो जाएगा। इसमें भी ब्रह्मा के मौजूदा दिन का करीब आधा दिन बीत चुका है। इन सारे कालों को जोड़ लिया जाए तो यूनिवर्स की मौजूदा आयु करीब 15 अरब वर्ष आती है जो कि साइंस के आंकड़े के काफी करीब है। समय के पैमानों को मैंने 'टाइम और यूनिवर्स' चैप्टर में डिटेल में बताया है।

टाइम और यूनिवर्स

तुम कल की चिंता करते हो
अनंत जन्म बीत चुके
धक्के खाते
स्वर्ग गए
नरक मिला
कुत्ते-बिल्ली बने
अनंत ब्रह्मांड चक्कर काट रहे हैं
और तुम
दो बीघा जमीन पे मर रहे हो
भगवान को साधने चले हो
दुनिया को नापने में लगे हो
आओ बैठो शांति से
कुछ आराम कर लिया जाये
वैसे भी क्या लेकर जाना है

वेद के अनुसार इस पूरे ब्रह्मांड का न कोई आरंभ है, न ही अंत। अभी जो संसार हम देखते हैं वह एक चक्र का हिस्सा है जिसके अंतर्गत यह बनता है और एक समय अवधि के बाद नष्ट हो जाता है। कुछ समय बाद फिर से इसकी उत्पत्ति होती है और फिर प्रलय और यह चक्र हमेशा ऐसे ही चलता रहता है। यह सब अनंत समय से हो रहा है और अनंत समय तक होता रहेगा। संसार की रचना और प्रलय के बीच जो निश्चित अवधि होती है, उस समय अवधि को कल्पों और युगों में डिवाइड किया जाता है।

हमारी धरती के टाइम के हिसाब से दिन और रात की अवधि तो हम जानते ही हैं। 15 दिन और रात से चंद्रमा का एक पक्ष बनता है। अमावस्या से पूर्णिमा तक के 15 दिनों को शुक्ल पक्ष और पूर्णिमा से फिर अमावस्या की अवधि को कृष्ण पक्ष कहा जाता है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष को मिलाकर वैदिक समय गणना के हिसाब से एक महीना बनता है। 30 दिन के महीने के हिसाब से बारह महीनों का एक वर्ष होता है जो सूर्य की आकाश में स्थिति के अनुसार उत्तरायण और दक्षिणायन में विभाजित होता है। प्रत्येक आयण की अवधि छह महीने की होती है। एक वर्ष को देवताओं के समय के अनुसार उनका एक दिन रात माना जाता है जिसमें उत्तरायण को दिन और दक्षिणायन को रात कहा जाता है। देवताओं का मतलब इन्द्र, अग्नि, वरूण, यम वगैरह है जो देवलोक में निवास करते हैं।

अब बात करते हैं चार युगों की। वेद के अनुसार समय चार युगों के चक्र के हिसाब से दोहराता रहता है। पहले युग को सतयुग कहा जाता है। इस युग में धर्म, न्याय, सत्य, पवित्रता जैसे गुण सबसे अधिक होते हैं। फिर जैसे जैसे द्वापर, त्रेता और कलियुग का समय आता है, ये सब सात्विक गुण लुप्त होते जाते हैं। देवताओं की समय गणना के हिसाब से सतयुग की अवधि 4800 दैवीय वर्षों के बराबर है। देवताओं का एक दिन मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है। उस हिसाब से मानव वर्षों में सतयुग की अवधि की गणना इस प्रकार होती है।

1 दैवीय दिन = 1 मानव वर्ष

1 दैवीय वर्ष = 360 दैवीय दिन = 360 मानव वर्ष

सतयुग की अवधि = 4800 दैवीय वर्ष = 4800 X 360 मानव वर्ष

= 17,28,000 मानव वर्ष

इसी प्रकार बाकी युगों की अवधि भी इस प्रकार है।

त्रेता युग की अवधि = 3600 दैवीय वर्ष = 12,96,000 मानव वर्ष

द्वापर युग की अवधि = 2400 दैवीय वर्ष = 8,64,000 मानव वर्ष

कलियुग की अवधि = 1200 दैवीय वर्ष = 4,32,000 मानव वर्ष

इन चारों युगों को सामूहिक तौर पर चतुर्युग या महायुग कहा जाता है। ऐसे एक हजार महायुगों की अवधि के बराबर ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतनी ही अवधि की एक रात। इस समय गणना के हिसाब से ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष बताई गई है।

ब्रह्मा के एक दिन की अवधि को कल्प भी कहा जाता है। मानव वर्षों की अवधि में बात करें तो एक कल्प की अवधि 4 अरब 32 करोड़ साल बनती है। इस हिसाब से ब्रह्मा की पूरी आयु कुछ इस प्रकार बनती है।

100 ब्रह्मा वर्ष = 100 X 360 दिन-रात

= 100 X 360 X 8.64 अरब मानव वर्ष

= 3,11,040 अरब मानव वर्ष

यह बात मुझे हॉलीवुड फिल्म इंटरस्टेलर की याद दिलाती है जिसमें धरती से दूर अंतरिक्ष में गए कुछ एस्ट्रोनॉमर (अंतरिक्ष यात्री) स्पेस में ऐसे टाइम-जोन में पहुँच जाते हैं जहाँ उनका बिताया हर मिनट धरती पर कुछ सालों के बराबर होता है और जब उनमें से एक एस्ट्रोनॉमर अपनी बेटी से मिलता है तो बेटी अपने पिता से भी ज्यादा उम्र की हो चुकी होती है। हालांकि यह फिल्म काफी सारी काल्पनिक बातों पर आधारित थी लेकिन वेद में बताई गयी समय गणना समय के इस तथ्य की सच्चाई साबित करती है। पुराणों में बताई गयी एक कहानी भी इस बात की पुष्टि करती है।

महाभारत में राजा काकुदमि की कहानी आती है। बहुत पुराने समय में कुशस्थली नाम के राज्य में काकुदमि राज करते थे। राजा की एक बहुत सुन्दर और गुणवान बेटी थी जिसका नाम रेवती था। जब रेवती विवाह के लायक हुई तो राजा काकुदमि को उसके विवाह की चिंता हुई। पूरी धरती पर उन्हें अपनी असाधारण बेटी के लिए कोई लायक वर नहीं मिल पाया। इससे चिंतित होकर राजा काकुदमि ने अपनी बेटी के साथ ब्रह्मलोक जाने का फैसला किया। उन्हें उम्मीद थी की परमपिता ब्रह्मा ही रेवती के लिए कोई उचित वर बता पाएंगे।

जब राजा काकुदमि ब्रह्मलोक पहुंचे तो वहां ब्रह्माजी की सभा में कुछ गन्धर्व नृत्य-संगीत कर रहे थे। राजा काकुदमि ने कुछ देर कार्यक्रम के खत्म होने का इंतजार किया। कार्यक्रम समाप्त हो जाने के बाद वह ब्रह्मा जी के सामने पहुंचे और उन्हें अपने आने का कारण बताया। ब्रह्मा जी बोले - हे राजन, ब्रह्मांड के अलग-अलग स्थानों में समय की गति अलग-अलग होती है। जितनी देर आपने ब्रह्मलोक में इंतजार किया, उतने समय में धरती पर 27 युग बीत चुके हैं। आपका राजपाट, सगे-संबंधी सब बहुत युगों पहले मर चुके हैं।

राजा काकुदमि यह जानकार दंग रह गए। उन्हें कुछ समझ नहीं आया। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें बताया कि इस समय धरती पर भगवान ने कृष्ण और बलराम रूप में अवतार लिया है। आपकी बेटी के लिए बलराम जी ही सबसे उचित वर हैं।

इस तरह बलराम जी की शादी रेवती के साथ की गयी थी।

मशहूर साइंटिस्ट आइंस्टीन ने टाइम-ट्रैवल की थ्योरी को काफी प्रचारित किया था। आइंस्टीन

के अनुसार अगर कोई इंसान प्रकाश की गति से ट्रैवल कर पाए तो समय उसके लिए बहुत धीमा हो जायेगा। स्पेस स्टेशन में भी जो अंतरिक्ष यात्री काफी समय बिता कर वापस आते हैं तो उनकी उम्र में कुछ सेकेंड का अंतर आ चुका होता है। इसका मतलब ग्रेविटी और प्रकाश की गति के हिसाब से ब्रह्मांड में अलग-अलग जगह समय की गति अलग-अलग हो सकती है। लगता है आइंस्टीन ने अपनी इस थ्योरी के लिए वेद से भी कुछ प्रेरणा ली थी।

अब बात करते हैं प्रलय की। प्रलय का मतलब है जब ये सारा संसार नष्ट हो जाता है, खत्म हो जाता है। हर कल्प के बाद एक प्रलय होती है जिसमें ब्रह्मलोक, जो ब्रह्मा का लोक है, से नीचे के सभी लोकों का नाश हो जाता है। इन सब के साथ पृथ्वी का भी विनाश हो जाता है। कल्प के बाद उतनी ही अवधि की जो रात होती है उस समय कोई संसार नहीं होता। रात की अवधि बीतने के बाद ब्रह्मा फिर से संसार की रचना करते हैं। यह क्रम ब्रह्मा के सौ वर्ष पूरे होने तक चलता रहता है।

ब्रह्मा के सौ वर्ष पूरे होने के बाद एक महाप्रलय होती है जिसमें ब्रह्मलोक समेत सारा भौतिक संसार भगवान में लीन हो जाता है। सारी सृष्टि शून्य हो जाती है। हालांकि ब्रह्मलोक से परे बहुत से आध्यात्मिक लोक (वैकुण्ठ, गोलोक वगैरह) भी हैं जिनमें खुद भगवान, उनके अवतार और उन्हें प्राप्त कर चुके संत रहते हैं। ये लोक किसी भी प्रलय में खत्म नहीं होते क्योंकि ये भौतिक तत्वों की सीमाओं से परे हैं। एक लंबे अंतराल तक भौतिक जगत भगवान में ही लीन रहता है और फिर दोबारा संसार की रचना होती है और एक नए ब्रह्मा जगत का निर्माण करते हैं। समय का चक्र इसी प्रकार चलता रहता है।

समय की विशालता में झाँकने के बाद अब वेद और पुराणों में बताये गए कुछ लोकों के बारे में जानते हैं। इनमें से सात लोक पृथ्वी से श्रेष्ठ हैं और सात निम्न। भगवद्गीता उपदेश के दौरान भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाया था। अर्जुन ने भगवान के विराट रूप में इन सभी लोकों को देखा था। इनमें से कुछ लोकों के बारे में मैं बताना चाहूँगा क्योंकि डिटेल में सभी लोकों के बारे में बताने पर यह चर्चा थोड़ी बोरिंग हो जाएगी।

ब्रह्मलोक - यह भौतिक संसार में सबसे ऊँची कक्षा का लोक है और यहीं पर संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा निवास करते हैं। वे लोग जो आध्यात्मिक स्तर पर सबसे ज्यादा उन्नति करते हैं उन लोगों को यह लोक प्राप्त होता है। इस लोक में रहने का सुख धरती के सुख से करोड़ों गुना ज्यादा बताया गया है। कल्प (ब्रह्मा का दिन) के बाद होने वाली प्रलय में इस लोक को कोई नुकसान नहीं होता।

तप लोक - यह लोक ब्रह्मलोक से लगभग 96 करोड़ मील नीचे है। ब्रह्मा के चार मनस पुत्र (मन से पैदा हुए बेटे) सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इसी लोक में रहते हैं। यह लोक भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ तपस्वियों के रहने की जगह है।

महर्लोक - यह लोक जन लोक से 16 करोड़ मील नीचे है। यह लोक भी उन महान तपस्वियों और ऋषियों के रहने की जगह है जो जन लोक और तप लोक के निवासियों की अपेक्षा थोड़ी कम आध्यात्मिक शक्ति के स्वामी हैं। महान तपस्वी महर्षि भृगु इस लोक में रहते हैं।

स्वर्ग लोक - यह लोक सूर्य और ध्रुव तारे के बीच के क्षेत्र में आता है। यही वह लोक है, जहां

इन्द्र समेत दूसरे देवता रहते हैं। इस लोक की राजधानी अमरावती है। यहां रहने वाले लोगों के सुखी जीवन के लिए यहां कल्पवृक्ष (हर इच्छा पूरी करने वाला पेड़) और कामधेनु नाम की गाय रहते हैं। यह वह लोक है जहां उन लोगों को रहने का मौका मिलता है जिन्होंने धरती पर अपने जीवनकाल में बहुत से अच्छे और सात्विक काम किए होते हैं।

भूलोक - भूलोक का मतलब है धरती जहाँ हम सब रहते हैं। इसे मृत्यु लोक भी कहा जाता है क्योंकि यही वह जगह है जहाँ जन्म लेने और मरने का चक्कर चलता रहता है। भूलोक की एक खासियत यह है कि यहीं पर मनुष्य शरीर मिलता है और वेद के अनुसार सिर्फ मनुष्य शरीर में ही प्राणी को कर्म करने का अधिकार है। बाकी सभी योनियों और देवताओं वगैरह को यह अधिकार नहीं है। वे सिर्फ भोग योनियां (जैसे कीड़े-मकोड़े, सांप, जानवर, पक्षी वगैरह) हैं जो हमारे द्वारा मनुष्य जन्म में किए गए हजारों लाखों पाप कर्मों से प्राप्त होती हैं। जिन पशु पक्षियों, पेड़ों या कीट-पतंगों को हम देखते हैं, उन शरीरों को हम सब भी अनगनित बार प्राप्त कर चुके हैं क्योंकि हमारे भी पुराने पापों का बहीखाता अनगनित है।

अतल - धरती से पांच लाख साठ हजार मील नीचे निम्न लोक शुरू होते हैं। भोग-विलास और ऐशो-आराम के मामले में यहां के लोगों देवताओं से भी अधिक लिप्त होते हैं। इन लोकों में घोर अँधेरा होता है क्योंकि यहां तक सूर्य की किरणें नहीं पहुंचती हैं। अतल लोक इन निम्न लोकों में पहला लोक है।

सुतल - सुतल असुरों के राजा बलि का लोक है। वामन अवतार के समय भगवान विष्णु ने युक्ति से राजा बलि से तीन कदम भूमि का दान मांगा और फिर अपने दो कदमों से पूरी धरती और सारे आकाश (स्वर्ग लोक वगैरह) को नाप लिया। राजा बलि बड़े पराक्रमी और दानी थे। वह भगवान के बड़े भक्त भी थे, लेकिन उन्हें अपने राज्य का बेहद घमंड था। इसलिए भगवान विष्णु राजा बलि की परीक्षा लेने के लिए वामन अवतार लेकर उनके यज्ञ में दान मांगने पहुँच गए थे। जब राजा बलि ने भगवान के वामन अवतार से दान माँगने के लिए कहा, तब उन्होंने बलि से दान में तीन कदम जमीन माँग ली। तब राजा बलि मुस्कुराए और बोले तीन कदम जमीन तो बहुत छोटा सा दान है। आप कोई और बड़ा दान माँग लीजिए, पर भगवान के वामन अवतार ने उनसे तीन कदम जमीन ही माँगी। तब बलि ने संकल्प के साथ उन्हें तीन पग जमीन दान में देने की घोषणा की। इसके बाद भगवान ने दो कदम में धरती और आकाश को नाप दिया, लेकिन तीसरे कदम के लिए राजा बलि के पास देने के लिए कुछ भी नहीं बचा। तब भगवान ने बलि से पूछा कि अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ? राजा बलि ने महादानी होने का परिचय देते हुए तीसरे पग के सामने अपने आपको समर्पित कर दिया। तब तीसरे कदम से भगवान ने राजा बलि को सुतल लोक में भेज दिया। हालांकि चूंकि बलि भगवान वामन के शरणागत हो गए थे, इसलिए उन्होंने बलि को इन्द्र से भी अधिक समृद्ध बना दिया।

ऐसे कुछ और भी लोक हैं जैसे रसातल और पाताल वगैरह जहाँ वासुकि, तक्षक जैसे महान नाग और दूसरी योनियां रहती हैं। सभी 14 लोकों के नीचे विशाल क्षीरसागर है जहाँ शेषनाग की शैय्या पर भगवान विष्णु रहते हैं। हम अपने पुण्य या पाप कर्मों से इन 14 लोकों में से कोई भी लोक हासिल कर लें, उन कर्मों का खाता शून्य हो जाने के बाद हमें वापस धरती पर जन्म मिलता है और ज्यादातर मामलों में वह जन्म किसी जानवर, पक्षी वगैरह जैसी नीच योनियों में

मिलता है। करोड़ों जन्मों के बाद कभी मानव शरीर मिलता है। इसलिए इन सभी लोकों को वेद में त्यागने लायक बताया गया है। जी हाँ, स्वर्ग और ब्रह्मलोक जैसे महान सुख वाले लोक भी त्यागने लायक हैं क्योंकि इनमें स्थायी सुख नहीं है। हम लोग अक्सर देखते हैं कि आम तौर पर किसी व्यक्ति के देहांत के बाद उसके परिवार वाले उसके नाम के आगे स्वर्गवासी लिखवा देते हैं जिसका मतलब है कि मृत्यु के बाद वह इंसान स्वर्ग में गया है। ऐसा उस इंसान को आदर देने के लिए किया जाता है। लेकिन वेद में बताया गया है कि जो स्वर्ग की कामना करता है वह व्यक्ति घोर मूर्ख है। मुण्डक उपनिषद के अनुसार जो लोग कर्म-धर्म का पालन करते हैं, वे कुछ समय के लिए स्वर्ग में जाते हैं लेकिन फिर नीचे धरती पर जानवरों जैसी किसी नीच योनि में गिरा दिए जाते हैं। इसलिए बिना भगवान की भक्ति के किया गया कर्म-धर्म भी श्रेष्ठ नहीं है।

दुर्लभ मनुष्य शरीर

जब जब लगाने बैठता कीमत खुद की
कम्बख्त बटुआ कहीं खो जाता था

एक गांव में एक ब्राह्मण था। वह काफी गरीब था। एक बार गांव से शहर की तरफ जाते हुए उसे ज़मीन में गड़ा हुआ एक खज़ाना मिल गया। अपनी किस्मत से बेहद खुश हुआ वह ब्राह्मण उस धन को अपने घर ले आया और उसे छुपा कर रख दिया। वह उस धन के प्रति इतना आसक्त हो गया कि अपनी पत्नी, बच्चों वगैरह पर भी उसे खर्च नहीं करता था और उसे तिजोरी में ही छिपाए रखता था।

पर चूंकि इस संसार में सब कुछ टेम्परेरी (अनित्य) है और समय का फेर बदलता रहता है, कुछ समय बाद ब्राह्मण की पत्नी और बच्चों ने उस धन में से कुछ धन निकाल लिया। काफ़ी सारे धन को चोर चुरा कर ले गए और बहुत से धन को सरकार ने टैक्स के रूप में ले लिया। इस सब के कारण वह ब्राह्मण फिर से कंगाल हो गया और उसका सब धन जाता रहा। वह ब्राह्मण उस धन का कभी अपने लिए उपयोग कर ही नहीं पाया।

ठीक इसी प्रकार भगवान ने हम लोगों को भी एक खज़ाना करुणावश मुफ़्त में दिया है। यह कीमती खज़ाना है मनुष्य शरीर जिसके पास ज्ञान प्राप्त करने, विवेक से निर्णय लेने और भगवान की भक्ति करने का सामर्थ्य है। इस संसार में कुछ ऐसी भी योनियां हैं जिनमें प्राणी कुछ घंटे भर या एक दिन की आयु पाते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं। वे भोग योनियां हैं। उन्हें केवल दुख भोगने के लिए धरती पर भेजा जाता है। दुख तो मनुष्य योनि में भी बहुत सारे हैं पर सिर्फ मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है। बाकी जीवों को यह सौभाग्य नहीं मिला हुआ। एक शेर जब हिरण का शिकार करता है तो शेर को पाप नहीं लगता क्योंकि प्रकृति ने शेर को विवेक की शक्ति नहीं दी है। वह नहीं समझ सकता कि क्या सही है और क्या गलत। हिरण के रूप में उसको सिर्फ अपना खाना नजर आता है। वैसे भी प्रकृति ने उसका शरीर मांस खाने के हिसाब से ही बनाया है इसलिए वह मांस खाकर ही जिंदा रह सकता है। जबकि हमें विवेक शक्ति और एक सूझबूझ वाला दिमाग गिफ्ट में मिला हुआ है। हम यह निर्णय ले सकते हैं कि हमें वेजिटेरियन बनना है या नॉन-वेजिटेरियन।

दरअसल हम सब अपने मनुष्य होने के फैक्ट को काफी हल्के में लेते हैं। हम कभी अपने को इस बात के लिए भगवान का आभारी नहीं मानते कि उन्होंने हमें मनुष्य जीवन दिया। हम इस बात की गहराई तक जाकर सोचने की कोशिश ही नहीं करते कि 84 लाख योनियों में से भगवान ने हमें मनुष्य योनि देने की करुणा की।

कुछ लोग जरूर ऐसा सोच सकते हैं कि इस छोटी सी बात के लिए हम अपने को भगवान का आभारी क्यों मानें। दुनिया में करीब सात सौ करोड़ लोग हैं जो सब मनुष्य हैं तो इस मामूली सी बात के लिए हम ईश्वर को क्यों धन्यवाद दें? हमारे मनुष्य शरीर को कीमती न समझने के पीछे हमारी अज्ञानता और भोलापन है। हम यह भूल जाते हैं कि हमारे मनुष्य होने के पीछे कुछ खास कारण हैं। हजारों लाखों जन्मों के पुण्य कर्म इकट्ठा होने के बाद और अनेकों कल्पों तक नीच योनियों में दुख भोगने के बाद भगवान दया करके हमें इंसान का शरीर देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं -

कबहुंक करि करूना नरदेही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड)

मतलब - लाखों करोड़ों जन्मों तक जीव के भटकने के बाद भगवान करूणावश उसे मनुष्य शरीर देते हैं। वह यह कृपा बिना किसी निजी फायदे के सिर्फ स्नेह के कारण करते हैं।

वेद और पुराणों के अनुसार सभी प्रकार के जीवों को मिला कर करीब 84 लाख योनियां हैं जो इस प्रकार हैं -

पानी के जीव जंतु - 9 लाख

पेड़ पौधे - 20 लाख

कीड़े मकौड़े - 11 लाख

पक्षी - 10 लाख

पशु - 30 लाख

देवता, मनुष्य आदि - 4 लाख

हम अपने रोजमर्रा के जीवन में बहुत से पशु, पक्षी, रेंगने वाले जानवर और वृक्ष वगैरह जीवों को अपनी धरती पर देखते ही हैं। इन्हीं सभी जीवों की सारी प्रजातियां मिलाकर 84 लाख योनियां बनती हैं।

इन योनियों में जन्म मिलना इंसान के कर्मों के बहीखाते पर निर्भर करता है और इस बही खाते का लेखा-जोखा खुद भगवान के पास होता है। किसी भी इंसान के अपने जीवन के दौरान किए गए पाप-पुण्य कर्मों के अनुसार उसे तीन तरह की गतियां प्राप्त होती हैं।

अगर कोई इंसान बहुत सारे पुण्य कर्म करता है तो वह मर कर उर्ध्व (ऊंची) गति को प्राप्त करके स्वर्ग जैसे ऊंचे लोकों को प्राप्त करता है। वहीं जिस इंसान के कर्म मिश्रित होते हैं यानी अगर किसी इंसान ने पुण्य और पाप दोनों तरह के कर्म किए हैं तो उसको स्थिर गति मिलती है और उसे फिर से मनुष्य जन्म लेना पड़ सकता है। हालांकि उसके पुण्य और पाप कर्मों की मात्रा के अनुसार ही मनुष्य जन्म में भी उसे किसी संत, धनाढ्य, गरीब या पापी मनुष्य के घर जन्म मिलता है। बहुत अधिक पाप कर्मों में लिप्त रहे इंसान को अधोगति प्राप्त होती है और उसे पशु-पक्षी, कीट-पतंगे या वृक्ष जैसी नीची योनियों में जन्म लेना पड़ता है। इंसान के कर्म जितने नीच होते हैं उसे उतनी ही नीची योनि में जन्म लेना पड़ता है।

संसार के विकास की प्रक्रिया में जीवन के सबसे सरल और बुनियादी रूप जैसे कि अमीबा वगैरह से लेकर सबसे जटिल रचनाओं जैसे हम इंसानों तक जीवन की विभिन्न रचनाओं का एक क्रम है। बेहद छोटे जीवों से लेकर पानी के जानवर, कीट-पतंगे, रेंगने वाले जानवर, पशु-पक्षी और इंसान तक इस क्रम में जैसे-जैसे आगे बढ़ा जाए तो शारीरिक और दिमागी संरचना उतनी ही जटिल और बेहतर होती जाती है। यदि आप इतने पाप कर्म करते हैं कि आपको कीट-पतंगे जैसी कोई नीची योनि मिले तो फिर मनुष्य योनि तक पहुंचने के लिए आप को उस हर योनि से

गुजरना पड़ेगा जो कीट-पतंगे की योनि से बेहतर है पर मनुष्य योनि से कमतर है।

भागवत पुराण के एक श्लोक के अनुसार -

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या

वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।

तैस्तैर अतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय

ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः।।

(श्रीमद्भागवत पुराण 11.9.28)

मतलब - संसार की रचना के क्रम में पेड़, सांप वगैरह, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, मछली वगैरह जैसे जीवों का निर्माण हुआ लेकिन उससे प्रकृति की चेतना शक्ति को पूरे तरीके से एक्सप्रेस (अभिव्यक्त) नहीं किया जा सका। तब इंसान की रचना हुई, जो भगवान या ब्रह्म को जान सकता था।

इसलिए सभी योनियों में मनुष्य योनि को ही सबसे बेहतर और आदरणीय बताया गया है। कर्म करने का अधिकार और विवेक से कोई फैसला लेने की ताकत भी इंसान को ही मिली हुई है। मनुष्य जन्म में किया गया हर कर्म फल दिए जाने का अधिकारी होता है, चाहे वह कर्म अच्छा हो या बुरा। मनुष्य शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। देवता लोग भी भगवान से प्रार्थना करते हैं कि अगर एक बार उन्हें मानव शरीर मिल जाए तो वे भक्ति कर के भगवद्प्राप्ति कर लेंगे। इसलिए हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है।

वेद (बृहदारण्यक उपनिषद) भी कहता है -

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मांल्लोकात्प्रैति स कृपणः

(बृहदारण्यक उपनिषद 3.8.10)

मतलब - जो इंसान मानव जीवन की समस्याओं को हल नहीं करता और अपने आप को जाने बिना कुत्ते-बिल्ली की सी जिन्दगी बिता के इस दुनिया को छोड़कर चला जाता है, ऐसा इंसान तुच्छ है।

लेकिन एक बात और है। मनुष्य शरीर मिलने के बावजूद अगर भगवान ने दूसरी कृपा नहीं की तो मानव जीवन भी बेकार चला जायेगा और भगवान से मिला यह पारस का पत्थर हमसे छिन जायेगा। वह दूसरी कृपा है किसी ऐसे संत से मिलवा देना जो हमें भगवान की प्राप्ति का रास्ता दिखा सके और उस रास्ते पर चलने में हमारी मदद कर सके। भगवद्प्राप्ति के लिए अध्यात्म की जिस ऊँची स्थिति पर इंसान को पहुंचना पड़ता है उस यात्रा में संत या गुरु ही मशाल बन कर रास्ता दिखाता है। संत चंदन के उस पेड़ की तरह है जो जीते जी उससे लिपटे हुए सांप को सुगंध और शीतलता देता है और कटने के बाद इंसान के शरीर को भी अग्नि प्रदान करता है।

संत कबीर के अनुसार -

आग लगी आकाश में, झर झर गिरे अंगार।

संत न होते जगत में तो जल मरता संसार।।

चलती चाकी देख के, दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में, दाना बचा न कोय।।

मतलब - संसार में संत नहीं होते तो अपने स्वार्थ की आग में हम सब जल कर मर जाते। जिस तरह आटे की चक्की के दो पाटों में गेंहू का हर दाना पिस जाता है, उसी तरह संसार की आपाधापी में इंसान पिस कर रह जाता है। लेकिन जो दाने चक्की की कील से चिपके रह जाते हैं उन्हें कोई नुकसान नहीं होता। वैसे ही जो लोग संत के संपर्क में रह जाते हैं वो इस संसार की चक्की में पिसने से बच जाते हैं।

इसलिए हमारी ड्यूटी है कि मनुष्य जीवन के लिए भगवान के आभारी रहें और दूसरी कृपा यानी किसी संत या गुरु से मिलवाने की प्रार्थना करें। साथ ही इस शरीर की सेहत का खास ध्यान रखें क्योंकि एक बार अगर यमराज ने दस्तक दे दी और यह शरीर हमसे छिन गया तो बिना पछतावे के हमारे हाथ कुछ नहीं रह जायेगा। काफी लोग कहते हैं कि मरने के बाद किसने देखा है। जो होगा देखा जायेगा, अभी तो मजे करो। कहीं ऐसा न हो कि मरने के बाद जो होना है वह इतना डरावना हो कि हमें बाद में पछताना पड़े। इसलिए अपने खजाने को पहचानें और उस ब्राह्मण की तरह इसके छिन जाने से पहले इसका सदुपयोग कर लें।

कलियुग - बुराई और अच्छाई

घोर कलियुग है

पैसा बोल रहा है
और लोग चुप हैं
गाड़ियां भाग रही हैं
पर हम वहीं खड़े हैं

घोर कलियुग है

बूढ़े आश्रम में हैं
जवान दफ्तरों में
घर खाली पड़े हैं
वहां कुत्ते सोते हैं

घोर कलियुग है

बाढ़ आ रही है
और पानी की कमी है
हवा में ज़हर है
और शराब में मिठास है

घोर कलियुग है

गंगा दूषित है
मन काले हैं
मकान जगमग हैं
दिलों में अंधेरा है

घोर कलियुग है

मंदिरों में भीड़ है
सौदा चल रहा है
दाम लगते हैं
कृपा बिकती है

घोर कलियुग है

महाभारत काल में अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के बेटे परीक्षित हुए। पांडवों की मृत्यु के बाद राजा परीक्षित धर्म के अनुसार शासन करने लगे। उनमें एक अच्छे राजा के सारे गुण थे। एक बार जंगल में घूमते हुए उन्होंने एक बैल और एक गाय को बात करते सुना। वह बैल धर्म था और गाय धरती थी। बैल केवल एक पांव पर खड़ा था जबकि गाय की दशा बेहद खराब थी और आंखों में आंसू थे।

भागवत पुराण के अनुसार धर्म के चार चरण बताए गए हैं - सत्य, तप, पवित्रता और दान। सतयुग में धर्म के चारों चरण हुआ करते थे। त्रेतायुग में तीन और द्वापर में केवल दो चरण रह गए जबकि कलियुग में धर्म का केवल एक चरण, दान बचा है। बैल रूप में धर्म उसी एक चरण पर खड़ा था।

परीक्षित ने देखा कि बैल गाय से पूछता है - "हे देवी, तुम्हारा मुख मैला क्यों हो रहा है? तुम्हें किस बात की चिंता है? कहीं तुम मेरी चिंता तो नहीं कर रही हो कि अब मेरा केवल एक पैर ही रह गया है या फिर तुम्हें इस बात की चिंता है कि अब तुम पर धर्म का पालन न करने वाले राज करेंगे?"

पृथ्वी बोली - "हे धर्म, तुम सब कुछ जानकर भी मुझ से मेरे दुख का कारण पूछते हो। भगवान श्रीकृष्ण के धरती से अपने धाम चले जाने के कारण मुझ पर घोर कलियुग आ गया है। तुम्हारे साथ ही देवताओं, पितरों और संतों के लिए भी यह महान शोक है। अब मेरा वह सौभाग्य खत्म हो गया है जिससे श्रीकृष्ण के चरण मुझ पर पड़ते थे।"

जब धर्म और पृथ्वी आपस में बात कर रहे थे तभी एक बहुत ही काले रंग का व्यक्ति आया और बैल और गाय को डंडे से मारने लगा। महाराज परीक्षित ने जब यह सब देखा तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने धनुष बाण को चढ़ाकर उसे ललकारा -"अरे पापी, तू कौन है? इन निर्बल गाय और बैल को क्यों सता रहा है? मेरे राज्य में इस निर्दयता की कोई जगह नहीं है। तू महान अपराधी है। तेरे अपराध का उचित दंड तेरा वध ही है। मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

राजा परीक्षित के ऐसा कहते ही वह काले रंग का व्यक्ति डर गया और परीक्षित जी के पैरों में गिर कर माफी मांगने लगा। वह बोला -"हे राजन, मैं कलियुग हूँ। श्रीकृष्ण के जाने के बाद अब द्वापर युग खत्म हो गया है और मेरा आगमन हो गया है। यह समय का फेर है और खुद ब्रह्मा जी के आदेश से इस धरती पर मेरे प्रभाव का समय आता है।"

राजा परीक्षित बोले कि अधर्म, पाप, झूठ, कपट, दरिद्रता जैसे शैतानों का मूल कारण केवल तू ही है। इसलिए तू मेरे राज्य से अभी निकल जा और लौट कर फिर कभी मत आना। इस पर कलियुग बोला कि "मैं कहां जाऊं? जहां तक सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश है मुझे आप धनुष बाण लिए दिखाई देते हो। मुझ पर दया करके आप मेरे लिए कोई उचित स्थान बताइए। आप एक दयालु राजा हैं इसलिए समय के चक्र्र को न रोक कर मुझ पर दया कीजिये।"

कलियुग के इस तरह कहने पर राजा परीक्षित सोच में पड़ गए। फिर विचार करके उन्होंने कहा - "हे कलियुग जुआखाना, शराबखाना, वैश्यालय और कसाईखाना- इन चार जगहों पर झूठ, नशा, वासना और गुस्से का निवास होता है। इन चार जगहों पर रहने की मैं तुझे छूट देता हूँ। कोई भी व्यक्ति जो अपना भला चाहे, उसे इन चारों से दूर रहना चाहिए।" कलियुग ने राजा का बहुत धन्यवाद किया और बोला - "हे राजन, कृपा करके मुझे एक और रहने का स्थान बताएं।" तब राजा परीक्षित ने कहा - "मैं तुझे सोने में रहने का स्थान देता हूँ।" पुराने समय में सोना मुद्रा की तरह प्रयोग में लाया जाता था इसलिए यहां सोने का मतलब पैसा है।" इसलिए जो पैसा झूठ से, कपट से या किसी भी गलत तरीके से कमाया जाए उसमें कलियुग का वास माना जाता है।

यह घटना मैंने इसलिए बताई क्योंकि कलियुग की यह खासियत है कि वह गलत काम से कमाए गए पैसे में, नशे में, विवाहेतर संबंध में, लड़ाई झगड़े में, निर्दोष जानवरों की हत्या जैसे निंदित कामों में रहता है। इसी कलियुग के प्रभाव के कारण इंसान पैसा कमाने में इतना मशगूल हो जाता है कि वह भूल जाता है कि पैसा सिर्फ जीने के लिए एक जरूरी माध्यम भर है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। वेद के अनुसार जरूरत से ज्यादा खुद पर खर्च किया गया पैसा मरने के बाद इंसान को बहुत नुकसान पहुंचाता है। हम जानते हैं कि आत्मा की मौत तो होती नहीं लेकिन शरीर की मौत के बाद आत्मा के साथ मन, बुद्धि और कर्म संस्कार भी जाते हैं। 60-70 सालों के थोड़े से सुख के कारण इंसान को करोड़ों जन्मों तक दुख भोगना पड़ता है। लेकिन फिर भी इसी कलियुग के प्रभाव के कारण हम वह सब कुछ कर रहे हैं जिसे करने से वेद हमें रोकता है।

मेरे एक दोस्त को कढ़ाई चिकन बड़ा पसंद है। कुछ दिन पहले हम तीन चार दोस्तों की मुलाकात हुई। दिल्ली के एक रेस्टोरेंट में हम लोग बैठे हुए थे। जब खाने के ऑर्डर की बात आयी तो जैसी कि मुझे उम्मीद थी मेरे उस दोस्त ने कढ़ाई चिकन का ऑर्डर दिया। कभी कभी उसे देखकर मुझे लगता है कि शायद भगवान ने उसे चिकन खाने के लिए ही बनाया है। खैर जब रेस्टोरेंट का स्टाफ चिकन की डिश लेकर आया तो समंदर के गहरे पानी में से झाँक रहे एक विशाल पहाड़ की तरह उस डिश में भी कुछ अलग चमक रहा था। दरअसल उसमें चिकन के साथ एक अंडा भी था। मेरी नजर उस अंडे पर पड़ी तो मैंने मजाकिया लहजे में अपने दोस्त को वह अंडा दिखाते हुए पूछा - "अरे, ये तेरी डिश में अंडा कैसा?"

मेरा दोस्त भी उस अंडे को देखकर थोड़ा चैंका तो जरूर लेकिन मेरे सवाल का जवाब उसके पास भी नहीं था। उसने होटल के स्टाफ से पूछा कि क्या यह कढ़ाई चिकन ही है । उस स्टाफ ने 'हाँ' में जवाब देते हुए कहा कि इस डिश में हम अंडा भी डालते हैं। मैंने मजाक में अपने दोस्त की टांग खींचते हुए कहा कि लगता है जिस मुर्गी का चिकन करी बनाया गया, वह मुर्गी गर्भवती थी और उसने मौत से पहले अंडा दिया होगा। इस पर सभी दोस्त ठहाका लगा कर हंस पड़े। वह बात तो हंसी में निकल गई लेकिन यही कलियुग का प्रभाव है कि जिस मासांहार को पुराणों में वर्जित बताया गया है वो हमारे मेन कोर्स का एक अहम हिस्सा बन चुका है। मैं मासांहार के बारे में कोई नैतिक ज्ञान नहीं देना चाहता और यह इंसान पर निर्भर करता है कि वह मांसाहार खाना चाहता है या नहीं। बस इतना जरूर बताना चाहता हूँ कि अपने स्वाद के लिए किसी जीव को बर्बरता से मारना वेद के अनुसार पाप की केटेगरी में आता है और मरने के बाद उसका गंभीर दंड इंसान को भुगतना होता है।

कलियुग के कुछ और प्रभाव बताने लायक हैं। कलियुग में भक्ति में भी आडंबर ज्यादा है और मन की शुद्धि कम। खुद में पूर्ण भगवान शिव को शिवरात्रि पर हजारों लीटर दूध चढ़ाने के लिए कई किलोमीटर लंबी लाइनें मंदिरों के बाहर लगी रहती हैं। जिस भगवान ने ही दूध को बनाया है, उसे कुछ लीटर दूध से हम क्या तृप्त करेंगे। शिवलिंग पर दूध उड़ेलने से भगवद्प्राप्ति नहीं होगी। शिव और शिवलिंग को अपना मन और उसमें उठने वाले सभी भाव समर्पित किये जाने से भगवद्प्राप्ति होगी। कलियुग में यह सब कहीं पीछे छूट गया है और आडम्बर की भरमार है। कलियुग में इंसान की उम्र, ज्ञान, शारीरिक और बौद्धिक क्षमता, सत्व और तेज वगैरह धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। सतयुग में जहां प्रहलाद आदि अनेक राजाओं के करोड़ों वर्ष शासन करने के किस्से सुनने को मिलते हैं वहीं कलियुग में अधिकतम आयु केवल सौ साल के आसपास रह गई है। इसी तरह इंसान की लंबाई, उसकी दिमागी और शारीरिक शक्ति, पवित्रता वगैरह भी बहुत कम हो चुकी है। भागवतपुराण में भी कलियुग को लेकर कुछ भविष्यवाणियां कही गई हैं जिनमें से कुछ अभी से सच साबित हो रही हैं जबकि कलियुग को बीते अभी केवल पांच हजार वर्ष ही हुए हैं।

कलियुग के बारे में शुकदेव परमहंस ने कहा है -

ततश्चानुदिनंधर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।

कालेन वलिना राजन्ऽक्ष्यन्स्यायुर्बलं स्मृतिः।।

(श्रीमद्भागवतपुराण 12.2.1)

मतलब - कलियुग में धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृति दिन प्रतिदिन कम होते जाएंगे।

शीतवातातपप्रावृऽहिमैरन्योयतः प्रजाः।

क्षुततृभ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिन्तया।।

(श्रीमद्भागवतपुराण 12.2.10)

मतलब - लोग अनियमित सर्दी, गर्मी, बरसात, हिमपात आदि से बुरी तरह प्रभावित होंगे। उन्हें झगड़ों, भूख-प्यास, बीमारियों, चिंता आदि से भी घोर दुख होगा।

भागवत पुराण में कलियुग के बारे में कुछ और भविष्यवाणियां बताई गई हैं जैसे -

- पाखंड को ही धर्म मान लिया जाएगा।
- पेट भरना ही जीवन का लक्ष्य होगा।
- जो शक्तिशाली होगा वही शासन करेगा।
- इंसानों की औसत उम्र 50 वर्ष से भी कम रह जाएगी।
- लोग अपने बुजुर्ग माता-पिता की रक्षा नहीं करेंगे।
- लोग केवल कुछ धन के लिए एक-दूसरे से नफरत और दुश्मनी करने लग जायेंगे।
- असभ्य लोग भगवान के नाम पर दान ग्रहण करेंगे।
- धर्म के बारे में कुछ न जानने वाले भी ऊंचे पदों पर आसीन होंगे और धर्म पर

बोलने के लिए उपयुक्त होंगे।

हम आज के समय में देख ही रहे हैं कि इन में से ज्यादातर भविष्यवाणियाँ फलीभूत हो रही हैं। लेकिन ऐसी अनेक कुरीतियों के बावजूद कलियुग में एक विशेष गुण है जो उसे अन्य युगों से बेहतर बनाता है।

कलेदोषनिध्रराजनस्ति हे एकोमहागुणः।

कीर्तनात् एव कृष्णस्य मुक्तसंगः परंव्रजेत्॥

(श्रीमद्भागवतपुराण 12.3.51)

मतलब - हालांकि कलियुग दोषों की खान है तो भी उसमें एक बड़ा गुण यह है कि इंसान केवल भगवान के नाम स्मरण और कीर्तन भर से ही भगवान को प्राप्त कर सकता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

मतलब - कलह और अहंकार के इस युग (कलियुग) में मोक्ष का एकमात्र साधन भगवान के पवित्र नाम का कीर्तन करना है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

यही कलियुग का सबसे बड़ा गुण है कि भगवान को प्राप्त करना इस युग में सबसे आसान है। सतयुग में जो लाभ हजारों वर्षों की तपस्या से, त्रेता में सैंकड़ों वर्षों की आराधना से और द्वापर में कुछ वर्षों की भक्ति से होता है, वही लाभ कलियुग में कुछ समय के भगवन्नाम स्मरण या संकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

क्या जंगल में रहना वैराग्य है

ज़रा महंगा चोला खरीदना ए बैरागी
जंगल में हैसियत देखकर बिराग मिलता है

हम हर रोज अपने आसपास अनेकों साधु, संत और बाबा वगैरह को देखते हैं। हमारे घरों में भी भिक्षा आदि के लिए साधु लोग आते रहते हैं। आप हरिद्वार, ऋषिकेश, वृंदावन जैसे तीर्थस्थानों की तरफ जाएंगे तो वहां के आश्रमों में हजारों सन्यासी, वैरागी, साधु संत आराधना करते हुए मिल जाएंगे जो परिवार और संपत्ति को त्याग कर वहां वर्षों से साधना कर रहे हैं। वे कठोर दिनचर्या का पालन करते हैं, योग, संकीर्तन जैसी क्रियाओं में व्यस्त रहते हैं और लग्जरी से जितना हो सके दूर रहने का प्रयास करते हैं। अगर हिमालय के और सुदूर इलाकों की तरफ जाया जाए तो बेहद कठोर साधना में लगे तपस्वी आपको मिल जाएंगे। लेकिन यहां एक सवाल सोचने लायक है। क्या ये सब संत, सन्यासी, साधु वास्तव में वैराग्य को प्राप्त कर गए हैं? क्या भगवा वस्त्र, लम्बी दाढ़ी, कमंडल और खड़ाऊं धारण करने को, आश्रम में रहने को और परिवार का त्याग कर देने को वैराग्य कहा जा सकता है? मैं सभी साधु संतों पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा रहा हूँ क्योंकि इन्हीं सब में वास्तविक वैरागी भी जरूर हैं। लेकिन इनमें एक बहुत बड़ा वर्ग गलत मार्ग पर बढ़ा जा रहा है। यह सब आडंबर वैराग्य नहीं है। सुनसान वन में परिवार से दूर रह कर कंद मूल खाने को वैराग्य नहीं कहा जा सकता। वैराग्य का असली मतलब है कि संसार के विषयों में मन की जरा सी भी आसक्ति न हो। वैराग्य के लिए परिवार व संसार की जिम्मेदारियों का त्याग करना जरूरी नहीं है। कर्महीन होना भी वैराग्य नहीं है। कर्महीन तो कोई इंसान रह ही नहीं सकता। घर-परिवार, सुख-सुविधाएं छोड़कर पहाड़ों और गुफाओं में जाकर एकांतवास करने वाला इंसान त्यागी तो कहा जा सकता है, वैरागी नहीं। वैराग्य सिर्फ संयमी, संतोषी और मन पर नियंत्रण रखने वाले धीर पुरूष को ही हो सकता है। वह इंसान जिसके पास सभी संसाधन होते हुए भी वह उतना ही खुद के लिए उपयोग करता है जितना शरीर के निर्वाह के लिए जरूरी है, वही असली वैरागी है। भगवान द्वारा यह संसार शरीर के निर्वाह के लिए ही बनाया गया है, विलासिता के लिए नहीं। अगर प्रकृति के संसाधनों का बेहिसाब उपभोग किया जाये तो उसका दंड व्यक्ति को मौत के बाद जरूर मिलता है।

कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि वैराग्य के ज्ञान की बात करना बहुत आसान है परंतु उसको व्यावहारिक जीवन में लागू करना उतना ही मुश्किल है। मैं इस तर्क से पूरी तरह सहमत हूँ। यह आसान कतई नहीं है। अगर यह इतना आसान ही होता तो हम सब कब के भगवद्प्राप्ति कर गए होते। तो फिर माया और लुभावने सामानों से भरे संसार में कैसे एक साधारण व्यक्ति वैराग्यपूर्ण जीवन जी सकता है। घूम फिर कर इसका उत्तर भी भक्ति और संयम पर आकर टिकता है। वेद कहता है जितना जितना कोई इंसान भक्ति साधना में आगे बढ़ता है उतना ही उसे सहज वैराग्य भी खुद-ब-खुद होने लगता है। कोई इंसान साफ मन से भगवान के प्रति जितने प्रतिशत शरणागत हो जाता है उतने प्रतिशत वैराग्य भी उसे अपने आप ही होने लगता है, ऐसा वेद का कहना है। हमारा मन तो एक ही है। उसे किसी एक ही दिशा की तरफ मोड़ा जा सकता है। अगर

भक्ति साधना में मन का लगाव बढ़ता जाए तो यह लंपट मन उतना ही शुद्ध होता जाता है और वैराग्य का आभास करने लगता है।

कठोपनिषद के अनुसार -

परं दृष्टवा निवर्तते

मतलब - अगर मन भगवान की सेवा में लगा रहे तो तुच्छ, भौतिक विषयों में उसके लग पाने की संभावना नहीं रह जाती।

इसके साथ संयम का अभ्यास भी इंसान को करना पड़ता है। डायबिटीज से पीड़ित व्यक्ति बहुत मन होने पर भी मीठे पकवानों से परहेज करता ही है। उसे पता होता है कि ऐसा नहीं किया तो शरीर को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। इसी प्रकार संयमित जीवन नहीं जिया तो जीवात्मा को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं। इसलिए संयमित जीवन बेहद जरूरी है। यह सब आज के समय में थोड़ा मुश्किल जरूर है लेकिन हम गंभीर प्रयास करेंगे तो जरूर आगे भी बढ़ेंगे। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा पहले धीरे-धीरे रेंग कर चलता है, फिर घुटने के बल, फिर लड़खड़ाते हुए और फिर अभ्यास से परिपक्व होकर चलने और दौड़ने लगता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे सच्चे मन से भक्ति और संयम का अभ्यास करते हुए व्यक्ति का अन्तःकरण शुद्ध होने लगता है और ऐसा व्यक्ति संसार को एक गृहस्थ व्यक्ति दिखते हुए भी वैराग्य की अनुभूति करता है।

हमारा आखिरी सच, मृत्यु

कल के ख्वाब में
कुछ हूर आयी थी जन्नत से
बोली परसों चलना है
पैगाम आया है
मैं सकपकाया
मैं तो दोजख का बंदा हूँ
बोली खुदा को मिलना है तुमसे
काफिरी में भी तूने
बंदे से ज्यादा
खुदा को याद रखा
परसों हम फिर आयेंगे
नहा लेना ए काफिर
जन्नत में घुसलखाना नहीं है

जीवन में कुछ बातें निश्चित हैं। जैसे समय पीछे की तरफ नहीं जा सकता, दिन की अवधि 24 घंटे ही रहेगी, मनुष्य को सांस लेने के लिए ऑक्सीजन चाहिए और जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु होनी ही है। मृत्यु एक ऐसा शब्द है जिसका जिक्र भर ही हमारे मन में एक नकारात्मकता और अनजाने डर को भर देता है। हम सब यह जानते हैं कि जितना बड़ा सच जीवन है, मृत्यु भी उतना ही बड़ा सच है। जो भी व्यक्ति हमें आज के समय में जीवित दिख रहा है, एक दिन उसका मरना तय है। फिर भी हम अपनी जिंदगी को लेकर जितनी प्लानिंग करते हैं, उतना ही मृत्यु नाम के पिशाच से डर कर दूर भागते हैं।

मृत्यु हमारे अस्तित्व का सबसे गहरा रहस्य है। एक नास्तिक आदमी आत्मा और भगवान के होने को चुनौती दे सकता है लेकिन मृत्यु के अस्तित्व को नहीं। मृत्यु तो नास्तिक की भी होती है और वह इस सच को प्रत्यक्ष रूप से देखता और महसूस करता है। मृत्यु हर जगह मौजूद दिखती है, हर पल घटित होती हुई, हर चीज, हर इंसान को नष्ट करती हुई।

मृत्यु से होने वाला नुकसान साधारण नहीं होता। इस नुकसान से कभी उबरा नहीं जा सकता। जो गुजर गया वह कभी लौटकर नहीं आता। इसलिए इससे बड़ी क्षति कोई नहीं। मरने वाले इंसान का पूरा का पूरा अस्तित्व ही मिट जाता है। यही कारण है कि मृत्यु मनुष्य का सबसे डरावना अनुभव बन गई है।

लेकिन जब भी हम मृत्यु को देखते हैं तो हमेशा एक बाहरी नजरिये से ही देखते हैं। बाहर से देखने पर मृत्यु हमेशा ही विनाशकारी लगती है क्योंकि यह हर वह चीज नष्ट कर देती है जिसे हम सच मानकर चलते हैं। और चूंकि हम शरीर से अलग किसी भी और तत्व (मन, आत्मा वगैरह) को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख पाते और मृत्यु शरीर को ही खत्म कर देती है इसलिए मृत्यु हमें विनाशकारी दिखती है। पर यही अगर हम अंदरूनी नजरिये से अपनी असली पहचान को देखते हैं तो पाते हैं कि उस असली पहचान को तो मृत्यु प्रभावित करती ही नहीं। कभी न मरने वाले तत्व आत्मा के लिए तो मृत्यु बस समय का एक पड़ाव भर है और कुछ नहीं। गीता में भी श्रीकृष्ण बार-बार इसी बात पर जोर देते हैं कि मृत्यु तो बस एक घटना भर है जैसे किसी इंसान के लिए कपड़े बदलना सिर्फ एक घटना है। इंसान अपने कपड़ों से मोह नहीं रखता। कपड़ों का फटना, खराब होना उसके लिए एक सामान्य और स्वाभाविक घटना है। वह जानता है कि यह प्रकृति का नियम है कि जो कपड़ा सूत से बनाया गया है उसको कुछ समय तक ही उपयोग में लाया जा सकता है। खराब होने पर हमारे लिए उसका कोइ्र काम नहीं। आप उस व्यक्ति को क्या कहेंगे जो खराब हो चुके कपड़ों को भी संभाल कर रखे रहे और कभी भी उन्हें नहीं फेंके। शायद आप उसे पागल आदमी ही कहेंगे। आप यही कहेंगे कि कपड़ा बना ही है कभी न कभी फटने के लिए। उसी तरीके से जो शरीर और आत्मा के सच को जानता है वह इंसान यह भी जानता है कि शरीर बना है तो उसका कमजोर होना और खत्म हो जाना तय है।

मृत्यु से संबंधित जो चर्चा अब मैं करने जा रहा हूँ वह बहुत से लोगों के लिए अंधविश्वास हो

सकती है और कुछ के लिए इम्पॉसिबल। कुछ लोग इसका मजाक भी उड़ा सकते हैं। पर चूंकि मृत्यु के परे की सच्चाई कोई भी जीवित इंसान अनुभव से नहीं जान सकता इसलिए इस बात पर भी सिर्फ वेद का ही विश्वास किया जा सकता है। गरुड़ पुराण में खुद भगवान विष्णु ने मौत के समय होने वाली घटनाओं को गरुड़ (भगवान विष्णु का वाहन) को बताया है। जिन्दगी में बहुत से पाप करने वाले व्यक्ति को मौत के बाद जो कुछ भी भोगना पड़ता है उसके बारे में इस पुराण में डिटेल में बताया गया है। गरुड़ पुराण में लिखी बातों को यहाँ बताने का असली मकसद यह है कि हम लोगों को इस बारे में सतर्क रहना चाहिए कि कहीं आम जिंदगी में भी अज्ञान के कारण हम कुछ ऐसे पाप कर्म तो नहीं कर रहे जिनके लिए हमें गंभीर सजा भुगतनी पड़े। गरुड़ पुराण की कुछ बातें मन में डर जरूर पैदा करती हैं लेकिन हो सकता है उस डर के कारण अपने जीवन में हम कुछ पाप युक्त कर्म करने से बच जाएं।

गरूड़ पुराण में बताया गया है कि जब मृत्यु की घड़ी नजदीक आ जाती है तो यमराज के दो दूत मरने वाले इंसान के सामने आते हैं। उन्हें देखकर व्यक्ति घबरा जाता है। जुबान बंद हो जाती है। वह बोलना चाहता है लेकिन गले से घर्र-घर्र की आवाज आती है और वह कुछ बोल नहीं पाता है। यमदूत यमपाश (एक तरह की फांस) फेंककर जब शरीर से प्राण खींचने लगते हैं तब पूरी जिंदगी में व्यक्ति ने जो भी कर्म किए हैं वह सारी घटनाएं व्यक्ति की आंखों के सामने एक एक कर के तेजी से गुजरती हैं।

जो व्यक्ति जीवन में जितना पाप करता है उसे मरते समय उतना ही ज्यादा कष्ट सहना पड़ता है। जिन लोगों ने अपना जीवन अच्छे कर्म करते हुए बिताया होता है उनके जीवन का अंत बहुत शांत तरीके से होता है। गरूड़ पुराण के अनुसार पापी इंसान को यमदूत भयानक व गुस्से से लाल हो चुकी आँखों वाले और यमपाश लिए हुए नजर आते हैं। वे आदमी को मरने के बाद यमपाश में बांधकर यमलोक ले जाते हैं। यमलोक धरती से करीब 86 हजार योजन (लगभग 10.5 लाख कि.मी.) दूर दक्षिण दिशा में है।

दरअसल हमारा अस्तित्व तीन परतों में विभाजित है। सबसे बाहरी परत है हमारा स्थूल शरीर जो पांच तत्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) से बना हुआ है। इसके भीतर मन, बुद्धि, अंहकार से बना एक सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के भीतर तीसरी परत उस जीवात्मा की है जो हमेशा पवित्र रहती है और जिसके भीतर परमात्मा रहते हैं। मृत्यु के बाद हम लोग स्थूल शरीर का अंतिम संस्कार कर देते हैं और सूक्ष्म शरीर के साथ आत्मा को यमदूत बिजली की सी गति से यमलोक ले जाते हैं जहां भगवान की प्रेरणा से यमराज, जो खुद एक महान वैष्णव हैं, सभी जीवों के कर्मों के हिसाब से उचित न्याय करते हैं।

जब पापी जीव को यमराज के सामने ले जाया जाता है तो वह उसे अपने सभी पाप कर्म याद दिलाते हैं और यातना शरीर (यातना शरीर एक ऐसा शरीर है जो किसी भी व्यक्ति को मरने के बाद नर्क वगैरह की यातनाएं भोगने के लिए मिलता है) की प्राप्ति के लिए वापस धरती पर भेजते हैं। यमदूत उस जीव को वापस धरती पर लाते हैं जहां पर उसके परिवार द्वारा 10 दिनों के पिंडदान से उसे यातना शरीर की प्राप्ति होती है। मौत के 13 दिनों बाद इस यातना शरीर को पाकर व्यक्ति की यमलोक की यात्रा दोबारा शुरू होती है और इस बार उसे पैदल ही यह दूरी तय करनी पड़ती है।

व्यक्ति को प्रतिदिन करीब 247 योजन (3000 किमी) की यात्रा करनी पड़ती है। इस प्रकार उसे यमलोक तक पहुंचने में करीब 348 दिन लगते हैं। इस यात्रा के दौरान यमदूत उसे लगातार टॉर्चर करते हैं और उसे नरक की यातनाओं के बारे में बताकर डराते धमकाते हैं। पापी व्यक्ति अपनी यात्रा के दौरान 16 पुरियों (जगहों) से होकर गुजरता है। इन पुरियों में कहीं पर उसे बेहद गर्मी में जलती बालू पर चलना पड़ता है, कहीं उसे हिमालय से भी कई गुना अधिक ठंड को झेलना पड़ता है, कहीं पर उसे पहाड़ों से नीचे गिराया जाता है और कहीं उस पर पत्थरों की बारिश होती है। इस प्रकार बहुत से भयंकर कष्ट उठाता हुआ वह जीव यमलोक पहुंचता है। वहां यमराज उसके पापों के फल भोगने के लिए उसे अलग-अलग नरक लोकों में भेजने का आदेश देते हैं। यातना शरीर प्राप्त किए हुए वह व्यक्ति बहुत से भयानक नर्कों के दुख भोगता है। गरूड़ पुराण के अनुसार नीचे बताये गए पाप कर्म करने वाले लोगों को इतनी डरावनी यातनाएं दी जाती हैं कि वे सब हाहाकार करते हुए अपने पापों को याद कर के पछताते हैं। दूसरों की संपत्ति पर कब्जा करने वाले, पति पत्नी के रिश्ते में ईमानदारी न रखने वाले, दूसरों के अधिकार छीनने वाले, अपने स्वाद के लिए जानवरों को मारने वाले, निर्दोष लोगों को सजा देने वाले, जरूरतमंदों की सहायता न करने वाले, अपने फायदे के लिए दूसरों का इस्तेमाल करने वाले, दान नहीं करने वाले, भ्रूण को गर्भ में नष्ट करने वाले, किसी महिला पर हाथ उठाने वाले, शराब या दूसरे नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले, वेद का अपमान करने वाले, प्रकृति का अपनी वासना के लिए दोहन करने वाले, देवताओं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव का सम्मान नहीं करने वाले लोग महापापी की कैटेगरी में आते हैं। ऐसे लोगों को बहुत से नर्कों में ले जाया जाता है जहां कहीं उन्हें जहरीले सांपों से कटवाया जाता है (महाररूखं नर्क), कहीं उसे गर्म तेल की कड़ाही में जलने के लिए छोड़ दिया जाता है (कुभींपाकम), कहीं उसे गर्म और तपती जमीन पर दौड़ाया जाता है (कालसूत्रम), कहीं उसे जानवरों के तेज दांतों से कटवाया जाता है (सुकरममुखम), कहीं ऐसे कुओं में फेंक दिया जाता है जहां सांप और बिच्छु जैसे जहरीले जानवर होते हैं (अंधकूपम), कहीं उसके हाथ पैर बांधकर आग के ऊपर जलाया जाता है (अग्निकुण्डम), कहीं लोहे की सलाखों को गर्म करके जननांगों के स्थान पर लगाया जाता है (सलमाली नर्क), कहीं खून, बाल, हड्डियों, नाखून और मांस से भरी नदी में व्यक्ति को डुबाया जाता है (वैतरणी नदी), कहीं शरीर के अंगों को काटकर तीरों से भेदा जाता है (प्राणयेधम), कहीं पर मांस नोचने वाले हजारों कुत्तों से हमला कराया जाता है (सरमेस्यनम), कहीं उसे पिघला हुआ लावा पिलाया जाता है (आयुम्नाम) और कहीं पर पक्षियों से व्यक्ति की आंखों को नोचा जाता है (पक्षवर्तणकम) आदि। कई बार इंसान को कई कल्पों तक ये दुख भोगने पड़ते हैं और उसके बाद भी उसे कीट-पतंगों, रेंगने वाले जानवरों या पशु-पक्षी जैसी नीची योनियों में जन्म लेना पड़ता है। फिर बहुत लंबे समय तक दुख भोगने और नीची योनियों में भटकने के बाद भगवान दया करके उस जीव को फिर से मनुष्य शरीर देते हैं।

कुछ लोग ऊपर बताए गए नरकों के अस्तित्व को कोरी बकवास या अंधविश्वास बता सकते हैं। पर सोचने वाली बात यह है कि ये सब बातें किसी शरारती बच्चे की कल्पना नहीं बल्कि खुद भगवान के अवतार वेदव्यास द्वारा रचित अठोरह पुराणों में से एक गरूड़ पुराण में हैं। दूसरी बात यह है कि ये सब बातें भगवान विष्णु ने गरुड़ जी को बताई थी इसलिए इनका आखिरी स्रोत खुद भगवान हैं।

इंसान को मृत्यु से संबंधित दो बातों का और ख्याल रखना चाहिए। पहली यह कि जिस तरह व्यक्ति का जन्म इस संसार में अकेले ही होता है, उसी प्रकार मरने के बाद भी उसे अकेले ही जाना पड़ता है। चाहे व्यक्ति का कितना भी बड़ा, भरा-पूरा परिवार मौजूद हो, उनमें से कोई भी मरने के बाद उसके साथ नहीं जाएगा। हम में से हर किसी को बिल्कुल अकेले ही जाना होगा। आप एक बार कुछ समय के लिए अपनी आंखें बंद कर के और मन को शांत करके एकांत में बैठ कर इस बात पर गहराई से चिंतन करें कि इस संसार से आप के साथ कोई नहीं जाएगा, सब यहीं छूट जाएंगे। परिवार वालों की तो छोड़िए, यह शरीर जिसे पूरी जिंदगी हम अपनी असली पहचान मानते रहते हैं, वही पहचान एक दिन यहाँ बेजान पड़ी होगी और और हमारे वही परिवार वाले उसे प्रकृति के हवाले कर देंगे। सोने पर सुहागा यह कि हम यह तक नहीं जानते कि जो शरीर और जीवन मिला है, वह कब तक रहेगा। किसी भी समय, किसी भी जगह और किसी भी परिस्थिति में मृत्यु की दस्तक हो जाएगी।

दूसरी बात यह कि कुछ लोग अपने परिवार वाले के देहांत के बाद बहुत ज्यादा कर्मकांड, पूजा-पाठ द्वारा यह उम्मीद करते हैं कि मरने वाले इंसान को किसी ऊंचे लोक की प्राप्ति होगी। हालांकि शास्त्रों में मृत्यु के बाद कुछ प्रथाओं को जरूरी बताया गया है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सिर्फ थोड़ी पूजा करके या ब्राह्मणों को भोजन करा देने से किसी दिवंगत व्यक्ति का उद्धार हो जाएगा। इंसान की मौत के बाद सिर्फ उसका कर्म संस्कार ही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। अगर व्यक्ति जीवन में वेद के बताये रास्ते पर चला है तो खुद-ब-खुद उसे ऊंची गति प्राप्त होगी लेकिन अगर वह वेद के बताये रास्ते से विपरीत दिशा में जाकर पाप युक्त कर्म करने में व्यस्त रहा है तो कोई कर्म कांड या पूजा उसके कर्म फल और प्रारब्ध को नहीं बदल पाएगा। एक छोटी सी कहानी से इस बात को समझते हैं।

महात्मा बुद्ध के समय की बात है। उन दिनों मौत के बाद आत्मा को स्वर्ग में जगह दिलाने के लिए कुछ खास कर्मकांड कराए जाते थे। एक युवक ने अपने पिता की मौत के बाद सोचा कि क्यों न पिता की आत्मा की शुद्धि के लिए महात्मा बुद्ध की मदद ली जाए, वह जरूर आत्मा को स्वर्ग दिलाने का कोई अच्छा व निश्चित रास्ता जानते होंगे। इसी सोच के साथ वह महात्मा बुद्ध के सामने पहुँच गया। उसने कहा - 'हे महात्मा, मेरे पिताजी नहीं रहे, कृपया आप कोई ऐसा उपाय बताएं कि यह सुनिश्चित हो सके कि उनकी आत्मा को स्वर्ग में ही स्थान मिले।'

बुद्ध बोले - 'ठीक है, जैसा मैं कहता हूँ वैसा करना। तुम 2 घड़े लेकर आना। एक में पत्थर और दूसरे में घी भर देना। दोनों घड़ों को नदी पर लेकर जाना और उन्हें इतना डुबोना कि बस उनका ऊपरी भाग ही दिखे। धातु से बनी हथौड़ी से उन पर नीचे से चोट करना और ये सब करने के बाद मुझे बताना कि क्या देखा?'

युवक बहुत खुश हुआ। उसे लगा कि बुद्ध द्वारा बताई गई इस प्रक्रिया से जरूर ही उसके पिता के सब पाप कट जाएंगे और उनकी आत्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होगी। अगले दिन युवक ने ठीक वैसा ही किया और सब करने के बाद बुद्ध के सामने जा पहुँचा।

बुद्ध ने पूछा - "आओ पुत्र, बताओ तुमने क्या देखा?"

युवक बोला - "मैंने आपके कहे अनुसार पत्थर और घी से भरे घड़ों को पानी में डाल कर चोट

की। जैसे ही मैंने पत्थर वाले घड़े पर प्रहार किया, घड़ा टूट गया और पत्थर पानी में डूब गए। उसके बाद मैंने घी वाले घड़े पर वार किया, वह घड़ा भी तत्काल फूट गया और घी नदी के बहाव की दिशा में बहने लगा।"

बुद्ध बोले - "ठीक है, अब जाओ और पुरोहितों से कहो कि कोई ऐसी पूजा, यज्ञ वगैरह करें कि वे पत्थर पानी के ऊपर तैरने लगें और घी नदी की सतह पर जाकर बैठ जाए।"

युवक हैरान होते हुए बोला - "आप कैसी बात करते हैं? पुरोहित चाहे कितनी भी पूजा करवा लें, पत्थर कभी पानी पर नहीं तैर सकता और घी कभी नदी की सतह पर जाकर नहीं बैठ सकता।"

बुद्ध बोले - "बिल्कुल सही और ठीक ऐसा ही तुम्हारे पिताजी के साथ है। उन्होंने अपने जीवन में जो भी अच्छे कर्म किए हैं, वे उन्हें स्वर्ग की तरफ उठाएंगे और जो भी बुरे कर्म किए हैं वे उन्हें नरक की ओर खींचेंगे। तुम चाहे जितनी भी पूजा-कर्मकांड करवा लो, तुम उनके कर्मफल को रत्ती भर भी नहीं बदल सकते।"

आत्मा की ऊंची गति और भगवद्प्राप्ति के लिए कोई शार्टकट नहीं है। इसलिए बेहतर यही है कि हम मृत्यु से डरें नहीं और उसे जीवन का हिस्सा भर मानकर वेद के बताये मार्ग को ही अपनाएं।

हम अकेले ही हैं

जनाजा निकल रहा है
कोई अमीर था शायद
इतने लोग साथ हैं
कंधे भी बदल रहे हैं
अरे यह क्या किया
अकेला लिटा दिया चिता पर
और बाकी सब?
बावले हो क्या
यहां से आगे सब अकेले
और वो लोग जो आये थे?
चले गए वापस
तुम भी जाओ

कुछ दिन पहले टी.वी. पर 'डोरेमोन' नाम का एक कार्टून चल रहा था। उसके एक एपिसोड के अनुसार एक बच्चे को, जिसका नाम नोबिता था, एक शक्ति मिलती है जिसके अनुसार वह जब चाहे ऐसे इंसान को दुनिया से गायब कर सकता है जो उसे परेशान करता हो। इस शक्ति को पाकर नोबिता की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। वह अपने कई दोस्तों को, जो उसे परेशान करते थे, गायब कर देता है। फिर अपने कुछ टीचर्स को गायब कर देता है। इस तरह धीरे-धीरे गुस्से में आकर वह दुनिया से सभी लोगों को गायब कर देता है और पूरी दुनिया में अकेला रह जाता है। शुरू में तो उसे बहुत अच्छा लगता है। वह अपनी पसंदीदा दुकान में जाकर आइसक्रीम निकाल कर खाता है, किताबों की दुकान से अपनी पसंद की कहानियों की किताबें ले आता है और घंटों घर में अकेला बैठ कर वीडियो गेम खेलता है। उसे बड़ा अच्छा लगता है कि उसे डांटने वाला और अपनी पसंद की चीज करने से उसे रोकने वाला कोई नहीं है। लेकिन जैसे-जैसे शाम होती है उसे महसूस होने लगता है कि वह तो बिल्कुल अकेला हो गया है। वह पार्क में अपने दोस्तों को ढूंढने जाता है पर वहां भी उसे कोई नहीं मिलता। धीरे-धीरे अँधेरा होने लगता है और उसे अब अपनी गलती का एहसास होने लगता है। उसे अपने माता-पिता की याद आने लगती है। वह रोने लगता है और महसूस करता है कि अकेले रहना कितना डरावना और मुसीबतों भरा अनुभव है। वह रोते हुए भगवान से प्रार्थना करता है कि मुझे ऐसी शक्ति नहीं चाहिए। यह देखकर कि नोबिता को अपनी भूल का एहसास हो गया है, कार्टून सीरियल का सेंट्रल करैक्टर 'डोरेमोन' जादुई ताकत से सभी लोगों को वापस ला देता है। नोबिता बहुत खुश होता है और सब लोगों से नफरत न करने का वादा करता है।

इस कार्टून का उदाहरण साझा करने का उद्देश्य है कि हम लोगों के लिए अकेले होने का एहसास बड़ा डरावना और मायूसी भरा होता है। सामाजिक प्राणी के तौर पर इंसान ने हमेशा समाज में रह कर ही जिंदगी जीना सीखा है। हमें बहुत सी जरूरतों के लिए दूसरे लोगों की जरूरत पड़ती है इसलिए हम उन लोगों पर निर्भर भी रहते हैं और धीरे-धीरे कुछ लोगों के प्रति आसक्त भी हो जाते हैं। लेकिन इस आसक्ति में हम एक मूल बात भूल जाते हैं। वह यह कि हम में से हर एक व्यक्ति जब इस दुनिया में आया था तो बिल्कुल अकेले आया था। हमारा इस दुनिया में आने का समय हमारे माता, पिता, भाई, बहन वगैरह से अलग था और कुछ अपवादों को छोड़कर हमारा जाने का समय भी उन सब से अलग ही होगा। हमें इस दुनिया से बिल्कुल अकेले ही जाना होगा। जब किसी मृत व्यक्ति की अर्थी को ले जाया जाता है तो सिर्फ मरने वाला ही उस सवारी का आनंद उठाता है, कोई और नहीं। बाकी सब लोग जो कुछ घंटों पहले तक उस इंसान के साथ सारे रिश्ते स्थापित कर रहे होते हैं, मौत होते ही उसके शरीर को अकेले श्मशान में जलता हुआ छोड़कर आ जाते हैं। फिर तो कोई चिता के पूरे जलने का भी इंतजार नहीं करता। इसी से संबंधित महाभारत की एक घटना की बात करते हैं।

महाभारत के युद्ध में पांडवों की जीत हुई थी और हस्तिनापुर का सारा राज्य युधिष्ठिर को

मिल गया। लेकिन अर्जुन का मन फिर भी उदास था। श्रीकृष्ण ने जब इसका कारण पूछा तो अर्जुन ने कहा कि वह अभिमन्यु की मौत के दुख को नहीं सह पा रहा है। वह श्रीकृष्ण से कहता है कि आप तो परमेश्वर हैं, क्या आप मुझे सिर्फ एक बार अभिमन्यु से मिलवा सकते हैं?

श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर कहा - "हाँ, मैं परमेश्वर तो हूँ और मेरे लिए अभिमन्यु को यहाँ बुलाना संभव भी है, लेकिन जो जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर अपने आगे के सफर पर निकल चुकी है, उससे मोह रखना ठीक नहीं है। तुम्हारा बेटा तो वह शरीर से था और वह शरीर अब नष्ट हो चुका है। इसलिए मेरा सुझाव यही है कि तुम यह बेकार की जिद छोड़ दो।"

अर्जुन को इससे संतोष नहीं हुआ। वह इस बात पर अड़ा रहा कि सिर्फ एक बार उसे अभिमन्यु से मिलवा दिया जाए। हार कर श्रीकृष्ण को उसकी बात माननी पड़ी। उन्होंने अपनी योगमाया शक्ति से अभिमन्यु को अपने नए शरीर के साथ वहां उपस्थित कर दिया। अभिमन्यु को देखकर अर्जुन की ख़ुशी का ठिकाना न रहा।

वह अभिमन्यु की तरफ दौड़ा और पुकारने लगा - "हे पुत्र"।

अर्जुन की बात सुन कर अभिमन्यु हँसने लगा। उसे हँसता हुआ देख कर अर्जुन को बड़ी हैरानी हुई।

उसने अभिमन्यु से कहा - "तुम ऐसे क्यों हँस रहे हो?"

अभिमन्यु बोला - "मैं तुम्हारी नादानी पर हँस रहा हूँ। तुम तो ज्ञानी पुरुष हो, तुम्हें पता होना चाहिए कि अनेकों बार तुम मेरे पुत्र बन चुके हो। हम दोनों के अनंत जन्म हो चुके हैं और इन अनंत जन्मों में हम सब एक दूसरे के भाई, पति, पत्नी, पिता, पुत्र वगैरह बन चुके हैं। ये रिश्ते सिर्फ शरीरों तक सीमित हैं, इसलिए अपने पुत्र-मोह को त्याग दो और राज्य के प्रति अपने कत्र्वयों का पालन करो।"

अर्जुन को अपनी अज्ञानता का एहसास हो चुका था।

क्या आपने अपनी पूरी जिंदगी में एक भी इंसान ऐसा देखा है जो मौत के बाद किसी सगे संबंधी को अपने साथ लेकर गया हो, कोई अमीर इंसान स्वर्ग में अपने साथ किसी नौकर को ले कर गया हो या कोई अपनी संपत्ति साथ रख कर ले गया हो। ऐसा आज तक कोई नहीं कर पाया। और यह बात हम पहली बार नहीं सुन रहे हैं। हजारों बार हम इस बात को कोरे ज्ञान की तरह एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान से निकालने से पहले उस बात के दिमाग में प्रोसेस होने तक का इंतजार नहीं करते। हर कोई जानता है कि जमा की गयी संपत्ति साथ नहीं जा सकती। सोने पर सुहागा यह कि जरूरत से ज्यादा जमा किये गए उस पैसे और संपत्ति को पाप की कैटेगरी में गिना जायेगा। वेद के अनुसार अपनी जरूरत से अधिक धन दान देने लायक है। हमारी जिंदगी का असली मकसद सिर्फ पैसा कमाना कतई नहीं है। हम इस सब के लिए संसार में नहीं भेजे गए हैं।

गरूड़ पुराण में इस बात को बड़ी खूबसूरती के साथ बताया गया है। गर्भ में भ्रूण बनने से लेकर उसके शिशु रूप में बाहर आने तक वह जीव क्या-क्या करता है, क्या-क्या सोचता है इसके बारे में भी पुराण में डिटेल में बताया गया है। गर्भ में एक दिन का जीव सूक्ष्म कण के समान होता

है। पांच दिन का जीव बुलबुले के समान और दस दिन का जीव बेर के समान होता है। इसके बाद वह एक मांस के पिण्ड का आकार लेता हुआ अंडे के समान हो जाता है।

एक महीने में शिशु का सिर बन जाता है और फिर दूसरे महीने में हाथ आदि अंगों की रचना होती है। तीसरे महीने में शिशु के शारीरिक अंगों को आकार मिलना शुरू हो जाता है जैसे कि अंगुलियों पर नाखून का आना, त्वचा पर रोम का बनना और हड्डी, लिंग, नाक, कान, मुंह वगैरह का बनना। तीसरे महीने के खत्म होने तक तथा चौथे महीने के शुरू होने के कुछ समय में ही त्वचा, मांस, रक्त, मेद, मज्जा का निर्माण होता है। पांचवे महीने में शिशु गर्भ की झिल्ली से ढककर माता के गर्भ में घूमने लगता है।

गरूड़ पुराण के अनुसार छठे महीने के बाद जब शिशु भूख-प्यास को महसूस करने लगता है और माता के गर्भ में अपना स्थान बदलने के भी लायक हो जाता है, तभी वह कुछ कष्ट भी भोगने लगता है। माता जो भी खाना खाती है, वह उसकी कोमल त्वचा से होकर गुजरता है। तीखा, मसालेदार या गर्म तासीर वाला खाना बच्चे की त्वचा को कष्ट देता है। इसके बाद बच्चे का सिर नीचे की ओर तथा पैर ऊपर की ओर हो जाते हैं। अब वह चाहकर भी इधर-उधर हिल नहीं सकता। वह खुद को एक पिंजरे में बंद कर दिए गए पक्षी की तरह महसूस करता है। इन दुखों से छुटकारा पाने के लिए शिशु हाथ जोड़ कर भगवान की स्तुति करने लगता है। माँ के गर्भ में पल रहा बच्चा जैसे ही अपने सातवें महीने में आता है, उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इस समय वह घोर दुख के कारण वैराग्य की अनुभूति कर भगवान की स्तुति इस प्रकार करता है - "हे जगत के आधार और उसको पालने वाले भगवान, मैं आपका शरणागत होता हूँ। हे भगवन, आपकी माया के कारण मैं दुनिया में अपने शरीर और अपने रिश्तेदारों को, 'यह मेरा है', ऐसा अभिमान कर जन्म मरण को प्राप्त होता हूँ। इस गर्भ में मैं अनेक दुख भोग रहा हूँ। हे भगवन, इस दुनिया में जाकर मैं आपकी भक्ति करूंगा और ऐसे उपाय करूंगा जिससे मैं मुक्ति को प्राप्त कर सकूं।" इसके बाद अपने आसपास गंदगी देख वह फिर से भगवान से प्रार्थना करता है और कहता है - "हे भगवन, मुझे कब बाहर निकालोगे? सभी पर दया करने वाले ईश्वर ने मुझे यह ज्ञान दिया है। मैं उस ईश्वर की शरण में जाता हूँ। भगवान मुझे जन्म और मरने के दुख से मुक्ति दिलाएं। माँ के गर्भ में पूरे नौ महीने शिशु भगवान से प्रार्थना ही करता है, लेकिन यह समय पूरा होते ही जब डिलीवरी के समय वह बाहर निकलता है तो उसे कुछ याद नहीं रहता। गर्भ से अलग होकर वह ज्ञान रहित हो जाता है और इसलिए भगवान को भी भूल जाता है।

एक संत थे। उनके पास एक जिज्ञासु गया। उसने संत महात्मा से कहा कि मैंने आपकी बहुत प्रसिद्धि सुनी है। आप मुझे भी कुछ ज्ञान दीजिए। मुझे कुछ ऐसी बातें बताइए जिससे मेरा जीवन सुधर सके। इससे पहले कि संत कुछ बोलते, वह फिर बोला कि आप यह सन्यासियों वाला जीवन कैसे जीते हैं। क्या आपका मन नहीं करता कि एक आरामदायक जिंदगी बितायी जाए, लाइफ में थोड़ी लग्जरी हो? संत ने कहा कि तुमने सवाल तो वाजिब किया है। इससे पहले कि मैं तुम्हें इसका जवाब दूं या किसी प्रकार का ज्ञान दूं, एक बात तुम्हें बताना चाहता हूँ।

जिज्ञासु उत्सुकता से बोला - "जी बताइए।"

संत ने कहा कि अब से सात दिन बाद तुम्हारी मौत हो जाएगी। यह सुनते ही वह व्यक्ति

घबरा गया। उसने संत से कहा कि क्या यह सच है या वह उसके साथ मजाक कर रहे हैं? संत ने कहा कि तुमसे मजाक करके मुझे कुछ नहीं मिलेगा। और मैं सच बोल रहा हूँ या नहीं, यह तुम्हें सात दिन के भीतर पता चल ही जाएगा। लेकिन अभी जो कुछ जानना तुम्हारे लिए जरूरी था वह मैंने तुम्हें बता दिया। सात दिन के बाद तुम्हारी मौत निश्चित है।

वह व्यक्ति साधु के चरणों में गिर पड़ा।

उसने कहा - "क्या कोई उपाय है जिससे मेरी मौत टल जाए? जीवन में मेरे अभी बहुत काम बचे हुए हैं। मेरा परिवार पूरी तरह मुझ पर निर्भर है। वे लोग मुझसे बहुत प्यार करते हैं। वे मेरे बिना जी नहीं पाएंगे।"

साधु ने कहा -"पुत्र, किस्मत को तो नहीं बदला जा सकता। इसलिए जो कुछ जरूरी काम हों, उन्हें तुम इन सात दिनों में निपटा लो।"

यह सुनकर निराश और दुखी मन से वह व्यक्ति अपने घर पहुंचा। घर में जाकर अपने आपको एक कमरे में बंद करके उसने चिंतन किया कि मेरे बाद मेरे परिवार का क्या होगा? मेरी पत्नी, बेटा, बेटी, पोते वगैरह मेरे बिना कैसे रहेंगे और मेरा व्यापार मेरे बाद कौन देखेगा। कुछ घंटों तक अकेले में वह इसी उधेड़बुन और चिंता में लगा रहा। उसके बाद जब उसे थोड़ा बोध हुआ कि जो होना है वह तो होकर ही रहेगा, तो उसने सोचा कि जो जीवन उसने जिया है, मरने के बाद जब उसका न्याय होगा तो क्या वह शुभ होगा? उसको ख्याल आया कि उसने तो काफी ऐशो-आराम वाली जिन्दगी बितायी है। उसे याद आया कि उसने न के बराबर धर्म-कर्म, यज्ञ, तप, दान, भक्ति वगैरह किए हैं। वह सोचने लगता है कि यह सब संपत्ति और मेरे परिवार वाले मेरी मौत के बाद तो मेरे साथ नहीं जाएंगे। तो क्यों न इस बात को परख लिया जाए कि क्या वे सब सच में मुझसे प्यार करते हैं?

उसने अपनी पत्नी, बच्चों और बहुओं को बुलाया और उन्हें बताया - "आज मैं एक सिद्ध महात्मा से मिला था। उन सिद्ध महात्मा ने मुझे बताया कि आज से सातवें दिन मेरी मृत्यु निश्चित है।"

यह सुनकर सभी परिवार वालों ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। उन्होंने उस व्यक्ति से कहा कि हम अपके बिना नहीं जी पाएंगे। यह सब सुनकर मोह के कारण उस व्यक्ति को भी बेहद दुख हुआ। उसने सोचा कि मुझसे वह परिवार छूट जाएगा जो मुझसे इतना अधिक प्यार करता है।

पर थोड़ा संभलते हुए उस व्यक्ति ने परीक्षा लेने के लिए अपने परिवार से कहा कि उन महात्मा ने मेरी मृत्यु को टालने का एक उपाय बताया है। यह सुनकर पूरा परिवार बहुत खुश हुआ और पूछा कि वह उपाय क्या है। व्यक्ति ने बताया कि महात्मा ने उसे एक गोली दी है जिससे उसकी मौत टल सकती है। यह सुनकर परिवार ने कहा कि आप उस गोली को मुंह में क्यों नहीं रख लेते। व्यक्ति ने कहा कि यह इतना आसान नहीं है। इस गोली से मेरी जिंदगी के कुछ साल तो बढ़ सकते हैं लेकिन उसके लिए किसी और को अपनी जिंदगी में से कुछ साल देने होंगे। तो तुम सब मुझे बताओ कि तुम में से कौन अपने जीवन के कुछ साल मुझे देने को तैयार है।

यह सुनकर पूरा परिवार सोचने लगा।

फिर कुछ देर बाद व्यक्ति का बड़ा बेटा बोला - "पिताजी, मेरी पत्नी और बच्चे मुझ पर निर्भर हैं। उन्हें मेरे साथ की बहुत जरूरत है। मेरे लिए यह तो मुमकिन नहीं होगा लेकिन मैं आपकी उत्तम गति के लिए सभी क्रियाएं कराऊंगा और मां तथा व्यापार का भी ख्याल रखूंगा।"

छोटे बेटे ने कहा - "पिताजी, आप तो जानते हैं कि मेरी पत्नी बहुत बीमार रहती है। अगर मैं भी इस दुनिया से चला गया तो मेरे बच्चों का भरण-पोषण कौन करेगा? इसलिए मैं भी अपने जीवन के वर्ष नहीं दे पाऊंगा।"

बेटी ने कहा - "मेरे पति और बच्चों का मेरे बिना कोई ख्याल नहीं रख पाएगा। और वैसे भी शास्त्रों में बेटी से कुछ लेना धर्म के विरूद्ध बताया गया है। तो मैं भी आपकी सहायता नहीं कर पाऊंगी।"

व्यक्ति यह सब सुनता रहा।

फिर उसकी पत्नी ने कहा - "मेरे बिना तो आप अपना कोई भी काम पूरा नहीं कर पाते, आपको मेरी सहायता की हमेशा जरूरत रहती है। मेरी जिंदगी के साल लेकर आप जी भी गए तो अकेले अपना गुजारा नहीं कर पाएंगे। अब आपकी उम्र भी हो गई है तो आप शांत मन से ईश्वर का चिंतन करते हुए अपनी किस्मत के इस सच को स्वीकार करें।"

व्यक्ति को यह सब देखकर बड़ी हैरानी हुई। अपने परिवार को भेजकर उसने अकेले में सोचा कि जिन लोगों के लिए मैंने अपना पूरा जीवन लगा दिया उन लोगों का प्यार दो मिनट के भीतर समाप्त हो गया। उसने सोचा कि कहीं मैंने अपना जीवन बेकार तो नहीं गंवा दिया। यह सब सोचकर उस व्यक्ति की आंखों में आंसू आ गए। वह सारी रात सोचता रहा कि जिन लोगों के लिए मैंने इतना सब किया, पाप कर्म भी किए, क्या वे लोग इसके योग्य भी हैं? उस व्यक्ति के मन में वैराग्य की उत्पत्ति होने लगी।

जब तीन-चार दिन बीत गए तो पूरे परिवार ने व्यक्ति के पास आकर कहा - "पिताजी आपका जाना तो तय ही है, क्यों न आप पूरी संपत्ति का बंटवारा कर दें जिससे कि आप के जाने के बाद परिवार में कलह न हो।"

यह सुनकर वह व्यक्ति और भी दुखी हो गया। लेकिन उसने दुखी मन से संपत्ति का बंटवारा कर दिया। फिर कुछ देर बाद उसकी पत्नी उसके पास आयी और कहा - "आपकी एक दुकान से जो किराया है वह आपने किसी को नहीं दिया है। आपके जाने के बाद पता नहीं दोनों बेटे मेरा ख्याल रखेंगे या नहीं? इसलिए उस दुकान को आप मेरे नाम कर दीजिए।"

उस व्यक्ति को बेहद गुस्सा आया और दुख भी हुआ। पर फिर भी उसने पत्नी को इसकी स्वीकृति दे दी। छठवें दिन उसने सोचा कि जो धन का हिस्सा अभी मेरे पास है, मुझे उसे दान कर देना चाहिए। ऐसा सोचकर कुछ सुपात्रों को बुलाकर वह अपना धन दान देने लगा। यह देख कर उसके परिवार वालों ने उसे रोक कर कहा कि आप भावुक हो कर इस प्रकार पैसे की बर्बादी मत करिए। आपके जाने के बाद हम थोड़ा-थोड़ा धन समय समय पर दान करते रहेंगे।

व्यक्ति के क्रोध और आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। वह अपना सारा धन दान कर उन्हीं संत महात्मा के पास चला गया और कहा कि कल सुबह मृत्यु होने से पहले यह मेरी आखिरी रात

है इसलिए मैं चाहता हूँ कि यह समय मैं आपके चरणों में ही बिताऊँ। महात्मा ने उसे ऐसा करने की अनुमति दे दी। वह व्यक्ति सारी रात संकीर्तन और ईश्वर भक्ति में लगा रहा। अगले दिन सुबह दस बजे जब उसकी मृत्यु का समय आया तो वह साधु के पास जाकर बैठ गया। अपनी मौत निकट जानकर भी उस व्यक्ति में जो बदलाव आ गया था उसके कारण वह भगवान के ही ध्यान में लगा रहा। हालांकि दस बजने के बाद भी उसकी मौत नहीं हुई। इसी प्रकार इंतजार करते-करते ग्यारह और बारह भी बज गए लेकिन उसकी मौत नहीं हुई।

व्यक्ति ने हैरान होते हुए साधु से पूछा -"महाराज, काल तो जरा सी भी देर नहीं करता। क्या यह आपका चमत्कार है कि अभी तक मेरी मृत्यु नहीं हुई?"

महात्मा ने कहा कि इस सवाल का जवाब देने से पहले मैं तुमसे यह सवाल पूछना चाहता हूँ कि पिछले सात दिन में तुमने क्या-क्या किया?

व्यक्ति ने कहा - "पिछले सात दिनों में मैंने अपने जीवन पर विचार किया। अपनी धन संपत्ति का बंटवारा कर दिया। कुछ पैसा तप और दान जैसे कामों में लगा दिया। मैंने चिंतन किया और जाना कि वास्तव में मेरे परिवार का कोई सदस्य मुझसे प्यार नहीं करता बल्कि वे सब अपने-अपने स्वार्थ के कारण मुझसे जुड़े हुए थे।"

महात्मा ने पूछा - "क्या तुमने इस सारे समय में ऐशो-आराम का लाभ नहीं उठाया?"

व्यक्ति ने कहा कि वह सब तो मेरे मन में आया ही नहीं।

महात्मा ने फिर पूछा - "जो सब कुछ तुमने अपने जीवन के साठ वर्षों मंे किया, वह सब इन सात दिनों में क्यों नहीं किया?"

व्यक्ति ने जवाब दिया - "मुझे अपनी मृत्यु दिखाई दे रही थी। ऐसे में मैं ऐशो-आराम में कैसे लिप्त रह सकता था?"

तब महात्मा ने उसे समझाया कि सात दिन तुम्हें मृत्यु याद रही और तुममें इतना वैराग्य उत्पन्न हो गया। तुमने मुझसे जो सवाल किया था कि मेरा मन सांसारिक सुखों को भोगने को क्यों नहीं करता, उसका जवाब यही है कि मैं मृत्यु नाम के सत्य को हमेशा याद रखता हूँ और यह जानता हूँ कि इस दुनिया से मुझे अकेले ही जाना होगा और मेरे सभी सगे-संबंधी मेरे साथ नहीं जाएंगे इसलिए मेरे मन में ऐशो-आराम का ख्याल नहीं आता।

मेरी बात को रखने के लिए यह कहानी सटीक बैठती है। मृत्यु के बाद हमारा कर्म फल भोगने के लिए कोई दूसरा नहीं होगा। वह हमें अकेले ही भोगना पड़ेगा। उस समय पछताने से बेहतर है कि समय रहते ही अपने कर्म को दुरुस्त कर लिया जाए।

आप यह जरूर कहेंगे कि मेरे माता-पिता या पत्नी या बच्चे तो मेरा बहुत ख्याल रखते हैं और उनके मेरे प्रति प्यार और समर्पण भाव पर मुझे कोई शक नहीं है। हो सकता है कि आपका कहना बिल्कुल सही हो, लेकिन इस बात पर गौर करने की जरूरत है कि क्या उनका प्यार और समर्पण केवल हमारी खुशी के लिए है या उसमें उनका भी कोई स्वार्थ शामिल है? ऐसा मेरा नहीं, वेद का कहना है।

बृहदारण्यक उपनिषद कहता है -

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति,

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

(बृहदारण्यक उपनिषद 2.4.5)

जिसका मतलब है कि इस संसार में हर इंसान किसी दूसरे के सुख के लिए उससे प्यार नहीं करता बल्कि सिर्फ अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए उससे प्यार करता है।

मैं यह नहीं कहता कि हमारे परिवार वालों को हमसे जो उम्मीदें रहती हैं वे गलत हैं। पर यह सोच कर देखिए कि अगर आप उनकी उम्मीदों को पूरा नहीं करते तो भी क्या आपके लिए उनका प्यार उसी गहराई से बना रहेगा। इस सवाल का बदसूरत जवाब है 'नहीं'। जबकि जो परमात्मा हमारे भीतर बैठा है उसे हमसे अपने किसी स्वार्थ के पूरा होने की उम्मीद नहीं है। वह हमारे हर जन्म में हमारे साथ रहता है। हमारा परिवार, सगे-संबंधी सिर्फ हमारे शरीर के रिश्तेदार हैं। ये अगले जन्म में हमारे संबंधी नहीं होंगे। लेकिन परमात्मा हमारा असली रिश्तेदार है। वह हमारे हर जन्म में, हर योनि में हमारे साथ साथ जाता है। वह हमारा साथ एक पल के लिए भी नहीं छोड़ता। इसलिए मत भूलिए कि उस परमात्मा के बिना 'हम अकेले हैं'।

भगवान से सौदा चल रहा है

कुछ लोग शिकायत किया करते हैं
आलू पांच आने सेर है बाजार में
प्याज पड़ा है
घर के बूढ़े के जैसे
रेहड़ी के कोने में कहीं
दो आने का चार सेर मिलता है
तुम्हारे खुदा को भी चढ़ाए मैंने
पूरे पांच रुपए
बदले में क्या मिला
जाम भी बदले में नशा बेचती है
घाटे का सौदा है मंदिर मस्जिद में
मैंने कहा बड़े बेवकूफ हो
काफिर रेहड़ी खरीद लेता पांच रुपए में
अगली बार खरा सौदा करना

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है -

अन्तवत्तु फल तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.23)

मतलब - कम बुद्धि वाले लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उन्हें प्राप्त होने वाले फल सीमित और कुछ समय के लिए होते हैं। देवताओं की पूजा करने वाले देवलोक को जाते हैं, लेकिन मेरे भक्त आखिर में मेरे परमधाम को प्राप्त होते हैं।

मुझे याद है एक बार हल्की गपशप के दौरान मेरा एक दोस्त मुझसे कहने लगा कि उसे मोक्ष की कोई कामना नहीं है। उसे मोक्ष बिल्कुल नहीं चाहिए।

मैंने हंसते हुए पूछा - "क्यों भाई, ऐसा क्यों चाहते हो?"

उसके जवाब में भोलेपन और अज्ञानता का एक मिश्रण था।

उसने कहा - "मोक्ष मिलने पर तो इस दुनिया में आना ही बंद हो जाएगा और फिर यहां के सुख और मनोरंजन के साधन तो कभी मिल ही नहीं पाएंगे।"

मैं उस समय उस गपशप को एक गंभीर चर्चा नहीं बनाना चाहता था इसलिए बिना कोई सवाल-जवाब किए मैंने भी मजाक के लहजे में कह दिया कि बात तो बिल्कुल ठीक कर रहे हो।

यह बात मैंने इसलिए बताई क्योंकि हम लोग भोलेपन के कारण यह जानते ही नहीं कि जिस भगवान की हम पूजा करते हैं, हमें उससे क्या मांगना चाहिए। पूरे भारत में मंदिरों, दरगाहों वगैरह के बाहर कभी न खत्म होने वाली लाइनें लगी हैं। धूप में, सर्दी में और बरसात में लोग पूरी शिद्दत के साथ खड़े हैं। वैष्णो देवी मंदिर हो, तिरूपति बालाजी, शिरडी साई मंदिर, अजमेर दरगाह या पद्मनाभ मंदिर, हर जगह साल भर दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता है। मैं भी इससे अछूता नहीं हूँ और मंदिरों की तरफ चल रही इस फ्लैग मार्चिंग में मैंने भी कई प्रसिद्ध तीर्थस्थलों की दौड़ लगाई है। जितना पैसा, सोना वगैरह इन मंदिरों की तिजोरियों में रखा है उसका कभी हिसाब लगाया जाए तो भारत की जी.डी.पी. करीब ढाई ट्रिलियन डॉलर से बढ़कर पांच ट्रिलियन डॉलर तक तो पहुँच ही जाएगी। जिस देश में जनसंख्या के पांचवे हिस्से से ज्यादा लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं और जिन्हें सुबह उठकर इस बात का अंदाजा नहीं होता कि शाम का भोजन उन्हें नसीब होगा या नहीं, उस देश में भगवान के मंदिरों पर बेहिसाब दान और चंदा आना इस बात का ही प्रमाण है कि लोग सर्वशक्तिमान ईश्वर को तो बड़े से बड़ा चढ़ावा चढ़ाने को तैयार हैं लेकिन वही भगवान जो बेसहारा और गरीब लोगों के भीतर भी बैठा है, उसकी उपस्थिति को वे लोग धता बता देते हैं। निर्धन और जरूरतमंद को दिया गया दान उस चढ़ावे से कहीं ज्यादा बेहतर है जो मंदिरों में किसी रिश्वत की तरह चढ़ा दिया जाता है।

चूंकि हमें इस बात का ज्ञान नहीं है कि अनंत शक्तियों के स्वामी भगवान से क्या मांगा जाए इसलिए हम भगवान को रिश्वत दिए जा रहे हैं और भगवान से व्यापार करने में लगे हैं। अगर कोई व्यक्ति बिल गेट्स से सौ डॉलर का चंदा मांगने दिल्ली से अमेरिका की फ्लाईट पकड़ कर जाए तो उस व्यक्ति को आप क्या कहेंगे? यही सब हम भगवान के साथ कर रहे हैं। जो भगवान हमें हमेशा के लिए अपना दिव्य आनंद दे सकता है, उससे हम पैसा, संपत्ति, प्रमोशन, संतान वगैरह मांगने में लगे हैं। हमारी गाड़ी बस यहीं तक अटकी रह जाती है। एक छोटा बच्चा अपने अरबपति पिता से ज्यादा से ज्यादा किसी खिलौने या आइसक्रीम वगैरह की ही मांग कर सकता है। वह अपने पिता से उसकी संपत्ति में से हिस्सा नहीं मांगता। ऐसा इसलिए क्योंकि वह बच्चा भोला है। उसे अपने पिता की हैसियत का अंदाजा नहीं है। इसी प्रकार हमें भी भगवान की हैसियत का अंदाजा नहीं है।

मुझे याद है दिल्ली के किसी मंदिर में एक संत के पास एक व्यक्ति आया। कुछ समय पहले उस मंदिर में गुंबद की मरम्मत के लिए कुछ निर्माण कार्य कराने की जरूरत महसूस हुई थी। वह व्यक्ति उसी सिलसिले में आया था। वह संत से बोला कि वह इस पूरे मंदिर की मरम्मत के लिए एक करोड़ रुपये लगाने को तैयार है। संत ने विनम्रता से कहा कि अगर तुम इस मंदिर पर एक करोड़ रूपये खर्च करोगे तो बदले में मुझसे सौ करोड़ की कृपा की उम्मीद करोगे। इसलिए तुम जाओ, गुंबद की मरम्मत हम करा लेंगे।

कुछ इसी तरह हम भी रिश्वत देकर भगवान से कृपा की उम्मीद करते हैं। 'अगर भगवान इस साल हुए नुकसान की भरपाई करवा दें तो मैं श्याम खाटू पर भंडारा करवा कर आऊंगा' या 'अगर भगवान बेटा होने की कृपा कर दे तो इसी साल मैं वैष्णो देवी के मंदिर में चुनरी चढ़ा कर आऊंगा।' हमारी भक्ति कुछ इसी तरह से होती है। भगवान से क्या मांगा जाए, यह निर्णय लेने लायक बुद्धि हम लोगों में नहीं है। इसलिए यह निर्णय भगवान पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि हमारे लिए क्या सबसे बेहतर है? मंदिर या तीर्थस्थानों पर जाने का असली मकसद यह होता है कि वहां के धार्मिक और सकारात्मक माहौल में अपने मन को भगवान में लगाना ज्यादा आसान होता है। हमारे जैसे साधारण लोगों के लिए भगवान से कुछ मांगते रहने का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि जैसे ही हमारी कामनाएँ पूरी नहीं होंगी, हमारे अंदर गुस्से और नास्तिकता के बीज उपजने लगेंगे। जीवन में हमें जो भी मिलता है वह प्रारब्ध के अनुसार होता है इसलिए किसी कामना के पूरा न होने पर हमारे लिए भगवान के विपरीत रास्ते पर चलने की संभावना बढ़ जाती है।

भगवद्गीता के अनुसार -

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषुपजायते।

सङ्गात्स´जायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.62)

मतलब - विषयों के बारे में सोचते-सोचते इंसान की उनमें आसक्ति हो जाती है और ऐसी आसक्ति से कामना का बीज पैदा होता है और फिर कामना के पूरा न होने से क्रोध पैदा होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.63)

मतलब - क्रोध से मोह का जन्म होता है और मोह से निर्णय लेने की शक्ति पर असर पड़ता है। जब निर्णय लेने की शक्ति भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने पर इंसान किसी लायक नहीं रहता।

जब नरसिंह अवतार के दौरान भगवान ने महाराक्षस हिरण्यकशिपु का वध किया तो उसके बाद हिरण्यकशिपु के बेटे प्रहलाद पर दया करते हुए उन्होंने कहा -

वरं वृणीष्वाऽभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्

(श्रीमद्भागवत पुराण 7.9.52)

जिसका मतलब है - हे पुत्र, वर मांगो। तुम जो कामना करोगे वह सब मैं देने को तैयार हूँ।

इस पर प्रहलाद ने जवाब दिया -

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्

(श्रीमद्भागवत पुराण 7.10.4)

मतलब - हे प्रभु, जो दास स्वामी के पास कुछ भी कामना ले कर जाता है, वह दास नहीं व्यापारी है। वह भगवान से सौदा करता है।

प्रहलाद ने फिर कहा -

यदि दास्यसि मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ।

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तुवृणे वरम्॥

(श्रीमद्भागवत पुराण 7.10.7)

मतलब - हे प्रभु, आप अगर देना ही चाहते हैं और अगर आपकी यही आज्ञा है तो मुझे यह वर दीजिए कि मैं आपसे कभी कुछ न मांगूं। मेरा अंतःकरण ऐसा कर दीजिए कि कभी मांगने की बुद्धि पैदा ही न हो।

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।

ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥

(श्रीमद्भागवत पुराण 7.10.8)

मतलब - यह कामना ऐसी बुरी चीज है कि अगर मन में पैदा हो गई तो मन, प्राण, आत्मा, धैर्य, लज्जा, तेज, सत्य ये सब नष्ट हो जाते हैं।

वेद के अनुसार कामना रहित भक्ति ही सबसे बेहतर है। यह कार्यभार भगवान पर ही रहने दिया जाए कि उन्हें हमारे लिए जो सही लगे, वह खुद ही हमें दे दें।

कर्म या भक्ति

तेरा मोहन
ढीठ है बड़ा
जब भी बैठूं खाने
पसीने से गूंथी रोटी
आ जाता है सामने
मेहनत का नमक मिला है इसमें
उसे कैसे दे दूं
कोई काम क्यूं नहीं करता
निठल्ला बेहया
प्रेम करता फिरता है
गांव वाले बोलते नहीं उसको?
और तू कहती है ज्योत जलाऊं?
मुझ पर भी डोरे डालता है
डरती नहीं मैं उससे
जा कर कह दे
चल जाने दे
कल आयेगा मांगने रोटी
तो खुद ही कह दूंगी

भगवद्गीता कहती है -

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समाधिगच्छति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.04)

मतलब - न तो कर्म से विमुख होकर (कर्म करना छोड़कर) कोई कर्मफल से छुटकारा पा सकता है और न केवल संन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्वशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.05)

मतलब - हर व्यक्ति को प्रकृति से मिले गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना पड़ता है, इसलिए कोई भी एक सेकेंड के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता।

कर्म किए बिना तो कोई रह ही नहीं सकता। क्या आप एक सेकं ेड के लिए भी अकर्मा हो सकते हैं? आप कहेंगे कि हाँ हाँ क्यों नहीं, हम बिना कुछ किए खाली बैठ जाएंगे। लेकिन आप देखेंगे तो सही, कानों से सुनेंगे भी, नाक से सांस भी लेंगे। अगर आप ये सब क्रियाएं भी किसी तरह कुछ देर के लिए रोक दें तो भी मन से विचार तो करेंगे ही। इसका मतलब है कर्म किए बिना कोई प्राणी नहीं रह सकता। इसलिए ऊपर दो श्लोकों में श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि कर्म करना छोड़कर जिंदगी को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

तो अब सवाल उठता है कि जीवन में कैसा कर्म किया जाए? और कर्म और भक्ति में क्या भेद है? सबसे पहले वेद की सहायता से कर्म को समझने की कोशिश करते हैं।

कठोपनिषद के अनुसार -

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।

बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

इन्द्रियाणि ध्याना हुर्विर्षयांस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणं॥

(कठोपनिषद 1.3.3 और 1.3.4)

मतलब - हमारा शरीर एक रथ की तरह है और बुद्धि उसका सारथि है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ (हाथ, पैर, आँख, नाक वगैरह) घोड़े हैं। इस रथ का रथी वह आत्मा है जो हमारा मूल

तत्व है। इस प्रकार मन तथा इंन्द्रियों की संगति से यह आत्मा सुख और दुख को भोगता है।

हमारा शरीर हमेशा मन, बुद्धि और इन्द्रियों के संगम से कर्म करता रहता है। हम आजीविका के लिए जो नौकरी, व्यापार वगैरह करते हैं, वह भी हमारे कर्म का एक हिस्सा है। हम दूसरों के प्रति व्यवहार में जो अच्छा बुरा करते हैं, वह भी हमारे कर्मों के बहीखाते में दर्ज हो जाता है। वेद में कर्म को पाप और पुण्य की कैटेगरी में डिवाइड किया गया है। पुराने समय में वर्णाश्रम धर्म के हिसाब से जीवन जीने की परंपरा थी। वर्ण मतलब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिनके अपने-अपने अलग-अलग कार्यक्षेत्र हुआ करते थे और समाज में इनकी जिम्मेदारियाँ भी अलग थीं। आश्रम को भी चार हिस्सों में डिवाइड किया गया था - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इसके अनुसार बचपन से युवा अवस्था तक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। युवा अवस्था से प्रौढ़ अवस्था तक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए परिवार के साथ गुजारा करता था। प्रौढ़ अवस्था के बाद व्यक्ति पैसा और प्रॉपर्टी परिवार को सौंप कर पत्नी के साथ जंगल में अनुशासित जीवन जीते हुए अध्यात्म की ओर आगे बढ़ता था और वृद्ध होने पर वह सब कुछ त्याग कर सिर्फ भगवान का स्मरण करते हुए समाधि की अवस्था में जाने की कोशिश करता था।

जो लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं और बिना किसी दूसरे प्राणी को दुख पहुंचाए, प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए संतुलित जीवन जीते हैं उन्हें पुण्य कर्म करने वाला कहा जाता है। वहीं जो लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करते, ऐशो-आराम की जिंदगी जीते हैं, प्रकृति का दोहन करते हैं या दूसरे जीवों को कष्ट पहुंचाते हैं, वे पापी व्यक्ति की कैटेगरी में आते हैं। इसके अलावा कुछ कर्म जैसे कि यज्ञ, तप, दान वगैरह बहुत पुण्य वाले बताए गए हैं।

पुण्य और पाप की परिभाषाओं के अलावा वेद में इनके फल के बारे में भी बताया गया है। पुण्य कर्मों का फल है मरने के बाद स्वर्ग लोक का मिलना और पाप कर्मों का फल है नरक जैसे भयानक लोकों में उन पाप कर्मों के फलों को भोगना। तो अगर कोई इंसान सारी जिंदगी पुण्य कर्म करता रहे और पाप कर्म करने से बचा रहे तो क्या यही सबसे बेहतर मार्ग है? इस सवाल के जवाब के लिए दो बातें समझने की कोशिश करते हैं।

पुण्य कर्मों के फल के रूप में स्वर्ग का सुख भोगने का सबसे बड़ा नकारात्मक पहलू यह है कि वह सुख सिर्फ कुछ समय के लिए मिलता है।

भगवद्गीता में बताया गया है -

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मत्र्यलोकं विशान्ति।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.21)

जिसका मतलब है - जब इंसान स्वर्ग के सुखों को भोग लेता है और उसके पुण्य कर्मों के फल खत्म हो जाते हैं तो उसे इस धरती पर वापस भेज दिया जाता है। इस प्रकार जो वेद के सिद्धांतों के अनुसार इन्द्रियसुख की कामना करते हैं, उन्हें जन्म-मृत्यु का चक्र ही मिल पाता है।

यही पुण्य कर्म करने का सबसे बड़ा नुकसान है। जब पुण्य कर्मों के फल खत्म हो जाते हैं तो

स्वर्गलोक भी छिन जाता है और उसके बाद धरती पर फिर से जन्म-मरण के चक्कर में फंसना पड़ता है और स्वर्ग से निकाले गए जीव को मनुष्य शरीर नहीं बल्कि पशु-पक्षी जैसी नीची योनि में जन्म मिलता है। जीव को फिर से मनुष्य शरीर हासिल करने के लिए बहुत सारे जन्म लेने पड़ते हैं।

दूसरी बात यह है कि आज के समय में वर्णाश्रम धर्म का पालन करना ही बहुत ज्यादा मुश्किल है, यज्ञ, तप वगैरह के कड़े नियमों का पालन तो बहुत दूर की बात है। इसलिए वेद में बताए गए नियमों का पालन आज के समय में लगभग असंभव है।

तो फिर हमारे लिए क्या बेहतर है? पुण्य करेंगे तो स्वर्ग मिलेगा लेकिन कुछ समय बाद छीन लिया जायेगा। पाप करेंगे तो नर्क मिलेगा जहाँ भयानक यातनाएं दी जाएँगी। दोनों ही सूरतों में हमेशा रहने वाला सुख तो नहीं मिलेगा। अकर्मा रहना भी संभव नहीं है। तो किया क्या जाए? वह कौन सा मार्ग है जिससे हमें हमेशा के लिए आनंद मिल जाए? वह है भक्ति युक्त कार्य। भगवान की भक्ति ही वह कर्म है जो सबसे बेहतर है। भक्ति का फल भगवद्प्राप्ति है जिसका आनंद कभी खत्म नहीं होता और और इंसान को दोबारा जन्म-मरण के चक्कर में नहीं उलझना पड़ता।

महाभारत का युद्ध खत्म हो जाने के 36 वर्ष बाद जब गांधारी के श्राप से यादव वंश का विनाश हो चुका था और कलियुग की शुरुआत होने वाली थी, तब श्रीकृष्ण अपना शरीर छोड़ने के के उद्देश्य से एक जंगल में एकांत मंे जाकर बैठ गए। तभी वहां श्रीकृष्ण के मित्र और भक्त उद्धव आ गए। उन्होंने श्रीकृष्ण से धरती छोड़कर न जाने का अनुरोध किया। तब श्रीकृष्ण ने उद्धव को समझाया बुझाया और उन्हें ज्ञान की बातें बतायीं जिसे उद्धव गीता के नाम से जाना जाता है। उद्धव गीता के दौरान श्री उद्धव ने भगवान श्रीकृष्ण से एक सवाल किया। वह सवाल था कि समाज में जो इतने सारे मत और दर्शन बन गए हैं, इसका क्या कारण है? और इन सब मतों और सम्प्रदायों में कौन सा सही है और कौन सा गलत? एक आम इंसान तो इतने सारे शास्त्रों की भीड़ में चकरा ही जायेगा। वह कैसे पहचाने कि उसे जीवन में कैसा कर्म करना है? किसी शास्त्र में यज्ञ करना सबसे अच्छा बताया गया है तो किसी में योग करना। कहीं पर तपस्या पर बल दिया गया है तो कहीं पर ज्ञान अर्जित करने पर। कोई निराकार ब्रह्म की वकालत करता है तो कोई सगुण साकार भगवान की उपासना करने को कहता है। कहीं कहीं तो जीव को ही ब्रह्म कहा गया है। ऐसा क्यों है कि वेद आपसे ही प्रकट हुआ फिर भी एक वेद से इतने सारे मत और संप्रदाय बन गए?

श्रीकृष्ण मुस्कुराये और फिर इसका बड़ा सुंदर जवाब दिया। उन्होंने कहा - "हां उद्धव, वेद संसार की शुरुआत में मुझमें से ही प्रकट होते हैं और प्रलय में मुझमें ही लीन हो जाते हैं। लेकिन जब मैंने वेद को प्रकट किया था तो वेद के ज्ञान का निचोड़ यही था कि इंसान के लिए भगवान की भक्ति ही सबसे जरूरी कार्य है। पर समय के साथ हर इंसान ने अपने ज्ञान, अपनी क्षमता, रूचि या पाखंड के भी कारण उसके अलग-अलग मतलब निकाल लिए और इसी तरह बहुत सारे दर्शन बनते चले गए। मुझ तक पहुँचने वाला रास्ता ही चलने लायक है, बाकी सभी त्याज्य (त्यागने योग्य) हैं।

इसलिए कर्म और भक्ति के बीच भक्ति हमेशा श्रेष्ठ है और इंसान को अपनी जिंदगी में

भगवान की भक्ति को ही सबसे ऊपर रखना चाहिए।

मोक्ष या भक्ति

मोक्ष नहीं चाहिए साहब

वहां सन्नाटा बहुत है

हमें थोड़ा शोरगुल पसंद है

मोक्ष का मतलब है मुक्ति। मुक्ति शब्द से मन को एक अंदरूनी खुशी का एहसास होता है। जब कभी भी हम किसी गहरे दुख से लंबे समय से गुजर रहे होते हैं तो हमारे मुँह से यही शब्द निकलते हैं कि पता नहीं कब इस दुख से मुक्ति मिलेगी। मुक्ति शब्द में छुटकारा मिलने का भाव होता है। पिंजरे में बंद एक पक्षी या जेल में बंद एक कैदी की जिंदगी की सबसे बड़ी ख्वाहिश मुक्त होना होती है। इसलिए वेद में भी चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से मोक्ष को आखिरी लक्ष्य बताया गया है। वेद के अनुसार जन्म मरण के चक्कर को सबसे बड़ा दुख माना गया है और आवागमन के इसी चक्कर से छुटकारा पाने को मोक्ष कहा गया है।

मोक्ष वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति सभी कलेशों और विकारों से मुक्ति पाकर भगवान की निर्विकार स्थिति में लीन हो जाता है। फिर उसे वापस धरती पर बार-बार जन्म नहीं लेना पड़ता।

वेद में आस्था रखने वाले आस्तिक लोग और वेद के विरोधी नास्तिक, दोनों प्रकार के भारतीय दार्शनिक मोक्ष को स्वीकार करते हैं और अपने-अपने नजरिये से मोक्ष की परिभाषाएं बताते हैं। नास्तिक कहे जाने वाले बौद्ध दर्शन में भी मोक्ष की अवधारणा है और मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। निर्वाण का मतलब है दुखों से मुक्ति। अज्ञान का नष्ट हो जाना, सभी पाप कर्मों का खत्म हो जाना, फालतू की वासनाओं की आग का बुझ जाना और खुद में ही पूरे तरीके से स्थित हो जाना निर्वाण की अवस्था है। जैन धर्म भी मोक्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए इसे जीवन का आखिरी लक्ष्य बताता है।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में भी मोक्ष ही जिंदगी का सबसे बड़ा लक्ष्य है। शंकराचार्य आत्मा और ब्रह्म को एक ही मानते थे। उनके अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है इसलिए ब्रह्म रूप में वह दुखों से हमेशा परे है लेकिन अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को भूल कर सुख दुख के चक्र में घूमती रहती है। इसलिए शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष का मतलब है आत्मा का अपने असली स्वरूप में स्थित हो जाना।

तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार -

अविद्याः निवृत्तिः एव मोक्षः।

जिसका मतलब है कि अज्ञान या अविद्या के कारण ही जीव अपनी असली पहचान ब्रह्म स्वरूप को भूल कर दुख भोगती है इसलिए इस अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है।

हालांकि मैं अद्वैत दर्शन का समर्थक नहीं हूँ क्योंकि आत्मा और ब्रह्म के अंदर बहुत से फर्क हैं जिनके कारण आत्मा को ब्रह्म नहीं माना जा सकता। लेकिन एक बात तो तय है कि हर फिलॉसोफी में मोक्ष की अपनी अपनी परिभाषा उपलब्ध है और वे सब मोक्ष को ही आखिरी मंजिल मानते हैं।

मोक्ष या मुक्ति पांच प्रकार की होती है, जिनका वर्णन चैतन्य चरितामृत में इस प्रकार किया

गया है -

1. सालोक्य - सालोक्य का मतलब है मुक्ति के बाद उस लोक को जाना जहाँ भगवान निवास करते हैं।

2. सामीप्य - सामीप्य का मतलब है भगवान का पार्षद बनकर हमेशा उनके पास रहना।

3. सारुप्य - सारुप्य का मतलब है भगवान जैसा रूप प्राप्त करना।

4. सार्ष्ट्टि - सार्ष्ट्टि का मतलब है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना।

5. सायुज्य - सायुज्य का मतलब है भगवान में हमेशा के लिए लीन हो जाना।

पर इससे पहले कि हम मोक्ष को सबसे बड़ा लक्ष्य मान लें, नीचे बताये गए उदाहरणों में यह जानने की कोशिश करते हैं कि बड़े-बड़े महापुरूष मोक्ष की बजाए कुछ और कामनाएं क्यों कर रहे हैं?

उदाहरण 1 - भगवान के भक्तों की कैटेगरी में सबसे ऊपर उन अनपढ़ गोपियों का नंबर आता है जिन्होंने वेद की पढ़ाई तो नहीं की थी लेकिन अपनी सरलता और बिना किसी कामना के की गई भक्ति से उन्हें वह स्थान हासिल हुआ जो बड़े-बड़े योगियों और विद्वानों को नहीं होता। हालांकि गोपियां वेद की ऋचाएं ही थीं जिनका कृष्ण अवतार के समय गोपी रूप में जन्म हुआ था। लेकिन फिर भी उस जन्म में वे अनपढ़ ही मानी गई थीं। इन गोपियों को देखकर संसार के रचयिता ब्रह्मा श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि मेरा सारा पुण्य लेकर मुझे ब्रजभूमि में कोई पेड़ पौधा वगैरह बना दीजिए ताकि जब गोपियां धरती पर चलें तो उनके पैरों की धूल उड़कर मेरे ऊपर गिरे। भगवान के अवतार ब्रह्मा अनपढ़ जाहिल गोपियों के पैरों की धूल मांग रहे हैं इसका मतलब गोपियों को जो कक्षा हासिल है वह ब्रह्मा को भी हासिल नहीं है।

उदाहरण 2 - त्रेतायुग के आखिर में जब भगवान राम बारह हज़ार साल धरती पर शासन करके अपने लोक वापस जाते हैं तो बहुत से भक्तों को ऊंचा लोक या मोक्ष वगैरह दे रहे होते हैं। इस दौरान वह हनुमान जी को भी अपना लोक या मोक्ष देने की इच्छा जताते हैं। लेकिन हनुमान यह कहकर मोक्ष को ठुकरा देते हैं कि जब तक श्रीराम की भक्ति और उनका नाम संसार में रहेगा, मैं यहीं रहकर रामभक्ति का प्रचार करूंगा। इतने बड़े महापुरुष ने भी मोक्ष को ठुकरा कर भक्ति को चुनना ज़्यादा बेहतर समझा।

उदाहरण 3 - राम अवतार काल में ही एक कथा का जिक्र आता है। वह कथा है काकभुशुण्डी की। काकभुशुण्डी को बहुत बड़ा रामभक्त माना जाता है। काकभुशुण्डी की कथा इस प्रकार है -

रावण के पुत्र मेघनाथ ने राम से युद्ध करते हुए राम-लक्ष्मण को नागपाश से बांध दिया था। देवर्षि नारद के कहने पर गरूड़ (जो भगवान विष्णु के वाहन हैं और नागों के सबसे बड़े दुश्मन हैं) ने नागपाश के सभी नागों को खाकर राम लक्ष्मण को नागपाश के बंधन से छुड़ाया। राम के इस तरह नागपाश में बंध जाने पर राम के परब्रह्म भगवान होने पर गरूड़ को संदेह हो गया। गरूड़ का संदेह दूर करने के लिए नारद ने उन्हें ब्रह्मा जी के पास भेजा। ब्रह्मा जी ने उनसे कहा कि तुम्हारा संदेह भगवान शंकर दूर कर सकते हैं। भगवान शंकर ने भी गरूड़ को उनका संदेह मिटाने के लिए काकभुशुण्डी जी के पास भेज दिया। आखिर में काकभुशुण्डी जी ने राम की

जीवनी सुनाकर गरूड़ के संदेह को दूर किया। गरूड़ के सन्देह समाप्त हो जाने के बाद काकभुशुण्डी जी गरूड़ को अपनी कहानी सुनाते हैं।

पुराने समय के एक कल्प में कलियुग का टाइम चल रहा था। उस समय काकभुशुण्डी का जन्म इंसान के रूप में अयोध्या पुरी में हुआ था। उस जन्म में वह भगवान शिव का भक्त था लेकिन अपनी भक्ति के घमंड के कारण दूसरे देवताओं की निन्दा करता था। एक बार अयोध्या में अकाल पड़ जाने पर वह उज्जैन चला गया। वहां वह एक दयालु ब्राह्मण की सेवा करते हुए उन्हीं के साथ रहने लगा। वे ब्राह्मण भगवान शंकर के बहुत बड़े भक्त थे लेकिन भगवान विष्णु की निन्दा कभी नहीं करते थे। उन्होंने काकभुशुण्डी को शिव जी का मन्त्र दिया। मन्त्र पाकर उसका अभिमान और भी बढ़ गया। वह दूसरे ब्राह्मणों से ईर्ष्या और भगवान विष्णु से दुश्मनी रखने लगा। उसके इस व्यवहार से उसके गुरू बड़े दुखी होकर उसे श्री राम की भक्ति का उपदेश दिया करते थे।

एक बार काकभुशुण्डी ने भगवान शंकर के मंदिर में अपने गुरू यानी जिस ब्राह्मण के साथ वह रहता था, उनका अपमान कर दिया। इस पर भगवान शंकर ने आकाशवाणी करके उसे श्राप दे दिया कि अरे पापी, तूने गुरू का अपमान किया है इसलिए तुझे सांप का शरीर मिलेगा। और उसके बाद के एक हजार जन्मों तक तुझे नीची योनियों में ही जन्म मिलेगा। लेकिन काकभुशुण्डी के गुरू बड़े दयालु थे इसलिए उन्होंने शिव जी की स्तुति करके अपने शिष्य को माफ करने की प्रार्थना की। गुरू के द्वारा क्षमा याचना करने पर भगवान शंकर ने आकाशवाणी करके कहा, "हे ब्राह्मण, मेरा श्राप तो बेकार नहीं जाएगा। काकभुशुण्डी को एक हजार जन्मों तक नीची योनियों में जन्म तो लेना ही पड़ेगा लेकिन जन्म लेने और मरने में जो भयंकर दुख होता है वह इसे नहीं होगा और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। इसे अपना हर जन्म याद रहेगा। संसार में इसे कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा और यह कभी भी, कहीं भी आ जा सकेगा। मेरी कृपा से इसे भगवान श्री राम की भक्ति भी प्राप्त होगी।

इसके बाद काकभुशुण्डी को सांप का जन्म मिला। कुछ समय बीतने पर उसने उस शरीर को बिना किसी कष्ट के त्याग दिया। उसे आगे के जन्मों में जो भी शरीर मिलता था, मरते समय वह उसे बिना किसी पीड़ा के त्याग देता था। हर जन्म की याद उसे बनी रहती थी। श्रीराम के प्रति भक्ति भी उसके भीतर धीरे-धीरे पनपने लगी। उसे आखिरी जन्म में ब्राह्मण का शरीर मिला। ब्राह्मण हो जाने पर वह ज्ञान प्राप्ति के लिए लोमश ऋषि के पास गया। जब लोमश ऋषि उसे ज्ञान देते थे तो वह उनसे अनेक प्रकार की बहस करता था। उसके इस व्यवहार से नाराज होकर लोमश ऋषि ने उसे श्राप दे दिया कि जा तू कौआ बन जा। वह तत्काल कौआ बन गया। श्राप देने के बाद लोमश ऋषि को पश्चाताप हुआ और उन्होंने उस कौए को वापस बुलाकर राममन्त्र दिया और इच्छा मृत्यु का वरदान भी दिया। कौए का शरीर पाने के बाद ही रामभक्ति मिलने के कारण काकभुशुण्डी को उस शरीर से प्रेम हो गया और वे कौए के रूप में ही रहने लगे तथा काकभुशुण्डी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

काकभुशुण्डी से बेहद खुश होकर एक बार श्री राम उन्हें कहते हैं -

काकभसुंडि मांगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।

अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।।

(रामचरितमानस)

जिसका मतलब है - हे काकभुशुण्डी, तू मुझे बेहद खुश जानकर वर मांग। अणिमा वगैरह आठों सिद्धियां, दूसरी ऋद्धियां और सभी सुखों की खान मोक्ष मुझसे ले लो।

इस पर काकभुशुण्डी ने यह जवाब दिया -

अविरल भगति बिसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।

जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद काउ पाव।।

(रामचरितमानस)

मतलब - हे प्रभु, मुझे सिद्धियों या मोक्ष का लालच नहीं है। अगर आप मुझसे खुश हैं तो आपकी जिस अविरल भक्ति को वेद और पुराण गाते हैं, जिसे बड़े-बड़े योगी और ज्ञानी खोजते हैं और भगवान की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है, अपनी वही भक्ति मुझे दीजिए।

गोपियों, हनुमान और काकभुशुण्डी के उदाहरणों से यह साफ दिख रहा है कि बड़े-बड़े ज्ञानी महापुरूष एक झटके में मोक्ष को ठुकराने को तैयार हैं। इसका मतलब जीवन के आखिरी लक्ष्य मोक्ष से भी श्रेष्ठ भगवान की भक्ति है।

वेदांत सूत्र के अनुसार -

आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम्

(वेदान्त सूत्र 4.1.12)

मतलब - मुक्ति के बाद भी भक्तियोग चलता रहता है।

मुक्ति और भक्ति में हमेशा भक्ति को ही वरीयता दी गई है। इसके उचित कारण भी हैं। दरअसल भक्ति का असली तात्पर्य है सिर्फ अपने स्वामी के सुख की ही कामना करना और उनको पाने की व्याकुलता हमेशा बनाए रखना। एक भक्त को भक्ति में जो रस मिलता है, वह किसी ऊंचे पद या मोक्ष आदि में नहीं मिलता। मोक्ष की स्थिति में जीव का भगवान में लय हो जाता है। मोक्ष की एक कमी यह है कि मोक्ष के बाद किसी जीव के लिए उस प्रेम रस को पाने का कोई मौका नहीं रहता क्योंकि मोक्ष के बाद कभी जीवन तो मिलता नहीं। और भगवान का प्रेम रस सिर्फ भक्ति से ही मिल सकता है और भक्ति के लिए तो इंसान के शरीर वाला जीवन चाहिए। मोक्ष में केवल दुखों से मुक्ति है, आनंद की प्राप्ति नहीं। लेकिन भक्ति में सर्वोच्च आनंद की भी प्राप्ति है और माया से भी छुटकारा है।

एक और अंतर यह है कि मोक्ष मिल जाने के बाद भी जीव भगवान का दास ही रहता है। लेकिन भक्ति के चारों भावों - दास्य भाव (अपने को दास और भगवान को स्वामी मानना जैसे हनुमान और राम का संबंध), सख्य भाव (भगवान के साथ दोस्ती का भाव रखना जैसे सुदामा और कृष्ण), वात्सल्य भाव (खुद को भगवान के माँ-बाप के रूप में देखना जैसे नंद-यशोदा या दशरथ-कौशल्या) और माधुर्य भाव (भगवान के साथ प्रियतम का भाव रखना जैसे राधा, गोपियां वगैरह) में भक्त जो चाहे भगवान से अपना रिश्ता मान सकता है। यह जरूरी नहीं कि हम

भगवान को एक बहुत शक्तिशाली तत्व मानकर उनसे डर कर उनकी भक्ति करें। भगवान कहते हैं कि तुम जो चाहे मुझसे रिश्ता बना लो और उस रिश्ते के अनुसार मुझसे प्यार का भाव रखो, यही तुम्हारी भक्ति है।

भगवान विष्णु ने कहा है कि उनके लिए अपने भक्त का स्थान उनकी पत्नी लक्ष्मी से भी ऊपर है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो मेरा सच्चा भक्त होता है, मैं हमेशा उसके पीछे-पीछे चलता हूँ ताकि उसके पैरों से उड़ने वाली धूल मुझ पर गिरे और मैं धन्य हो जाऊं। भगवान खुद को अपने भक्त का भक्त मानते हैं। भक्ति की श्रेष्ठता का इससे बड़ा सबूत नहीं दिया जा सकता। एक छोटी सी कहानी से इसी भक्ति की श्रेष्ठता को जानने की कोशिश करते हैं।

एक बार द्वारिका में श्रीकृष्ण रूक्मणी जी की गोद में लेटे हुए आराम कर रहे थे और उनके मुँह से राधे राधे निकल रहा था। रूक्मणी से रहा नहीं गया और उन्होंने कहा कि यह राधा कौन है जिसका नाम आप हमेशा लेते रहते हैं। श्रीकृष्ण समझ गए कि रानियों को ईर्ष्या हो रही है इसलिए उन्होंने एक परीक्षा लेने की सोची। उन्होंने जोर-जोर से कराहना शुरू कर दिया और कहने लगे कि मेरे शरीर में बहुत पीड़ा हो रही है। रानियों को समझ नहीं आया कि अचानक श्रीकृष्ण को क्या हो गया है। तभी श्रीकृष्ण की ही प्रेरणा से नारद जी वहां आ पहुंचे।

नारद जी ने सभी रानियों से पूछा कि आप सब इतनी परेशान क्यों हैं। रूक्मणी ने कहा कि श्रीकृष्ण को बड़ा कष्ट हो रहा है। यह सुनकर नारद जी मन ही मन हंसे कि जो भगवान हमेशा आनंदमयी रहता है उसे कोई कष्ट कैसे हो सकता है। फिर भी कुछ गंभीर होकर उन्होंने श्रीकृष्ण के पास चलने को कहा। श्रीकृष्ण के सामने जाकर उन्होंने पूछा कि प्रभु आपकी इस पीड़ा का उपचार क्या है? श्रीकृष्ण ने कहा कि इस असहनीय पीड़ा का केवल एक ही उपचार है कि किसी भक्त की चरण धूल मुझे मिल जाए। यह सुनकर श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर नारद जी बहुत से बड़े-बड़े भक्तों, महापुरुषों, संतों वगैरह के पास गए लेकिन सभी ने नारद जी को यह कह कर वापस भेज दिया कि आप हमसे इतना बड़ा पाप करने को क्यों बोल रहे हैं? एक भक्त या दास अपने स्वामी को अपने चरणों की धूल कैसे दे सकता है? यह तो घोर पाप है और अगर हमने ऐसा किया तो हमें नरक जाने को मिलेगा। इस प्रकार सभी महापुरूषों के पास से नारद जी बैरंग ही लौट आए। नारद जी ने सोचा कि सभी रानियां भी श्रीकृष्ण की परम भक्त ही हैं, क्यों न उनसे चरण धूल मांग ली जाए। लेकिन रानियों ने भी यह कह कर मना कर दिया कि अपने स्वामी को चरण धूल देने का पाप करके हमें नरक में नहीं जाना।

थक हार कर नारद जी वापस श्रीकृष्ण के पास पहुंचे और उन्हें कहा कि हे प्रभु, मैं एक भी ऐसा भक्त नहीं ढूंढ पाया जो आपके लिए अपनी चरण धूल दे सके। अब आप ही बताइए कि ऐसा भक्त कहां मिलेगा? श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर कहा कि आप ब्रज (वृंदावन) में जाइए। नारद जी समझ गए कि उन्हें किसके पास जाना है। वे सीधा गोपियों के पास गए। नारद जी को देखते ही गोपियों ने उन्हें घेर लिया। वे सब नारद जी से श्रीकृष्ण का हाल चाल पूछने लगीं। नारद जी ने कहा कि श्रीकृष्ण बड़े कष्ट में हैं। यह सुनकर सभी गोपियों को बहुत दुख हुआ। फिर नारद जी ने कहा कि एक चीज से उनका सारा कष्ट दूर हो सकता है। गोपियों ने उत्सुकता से पूछा कि वह चीज क्या है? इस पर नारद जी ने कहा कि आपकी चरण धूलि से उनका कष्ट चला जाएगा। यह सुनते ही सभी गोपियों ने झट अपने पांव फैला दिए और कहा जितनी चाहें चरण धूल ले जाओ।

नारद जी ने हैरान होते हुए कहा कि क्या आप लोगों को पता है कि आपको इसका क्या फल मिल सकता है?

इस पर गोपियों ने कहा - "हम जानते हैं कि हमें नरक मिलेगा। लेकिन कोई बात नहीं, हर जीव ने अनगनित जन्मों में अनगनित बार स्वर्ग नरक का भोग किया हुआ है। हम एक बार और नरक भोग लेंगे लेकिन हमारे स्वामी का कष्ट तो दूर हो जाएगा।"

नारद जी भौंचक्के से खड़े रह गए। जब कुछ होश आया तो उन्होंने कुछ चरण धूलि अपने मस्तक पर लगाई और बाकी लेकर वहां से चले गए। वेद के अनुसार भक्ति का भाव ऐसा है कि जिसमें इतना प्रेम रस है कि कोई भी संसार का सुख उस रस के आगे फीका लगता है। शुद्ध भक्ति करते-करते भक्त उस स्थिति पर पहुंच जाता है जहां उसे भगवान की भक्ति मोक्ष से भी ज्यादा प्यारी लगने लगती है।

पढ़े लिखे अंधविश्वासी

कल घर से निकला
दफ्तर जाने को
जरा जल्दी में थी काली बिल्ली
शायद मुझसे भी ज्यादा
रास्ता काट गई
मूरख कहीं की
जाती अपने रास्ते
मुझसे क्या बैर है जाने
मैं खंभे सा खड़ा रहा
अपशकुन होता है न
मां ने सिखाया था
तभी एक भूरा कुत्ता
दौड़ा वहां से
बिल्ली के पीछे
कुत्ते की मां ने नहीं सिखाया
बेवकूफ कुत्ता

कुछ साल पहले की बात है। मैं अपनी फैमिली के साथ वृंदावन घूमने गया था। वहां का एक प्रसिद्ध मंदिर है 'बांकेबिहारी मंदिर'। मंदिर में दर्शन करके हम लोग मंदिर के आँगन में परिक्रमा करते हुए बाहर की ओर आ रहे थे। मेरे साथ ही मेरा भाई भी चल रहा था। चलते-चलते हम दोनों की नजर मंदिर की दीवार से रिस रहे पानी की एक धार पर पड़ी। दीवार पर वह पानी ऊपर से शायद किसी निकासी से बह रहा था। उस पानी की धार को देखकर हम दोनों को एक शरारत सूझी। हम दोनों ने आपस में बात की और फिर उस पानी की धार में से थोड़ा सा पानी अपनी अंजलि में ले लिया। उस पानी को अपने सिर के ऊपर छिड़कते हुए और पानी की धार को प्रणाम करते हुए हम दोनों आगे बढ़ गए और पीछे देखने लगे। हमने देखा कि हमारे पीछे चल रहे लोगों में भी उस पानी को अंजलि में लेने और सिर पर छिड़कने की होड़ सी लग गई। सभी को लगा कि शायद कोई चमत्कार है जो यह पानी अपने आप टपक रहा है। मैं और मेरा भाई मुस्कुराते हुए आगे बढ़ गए।

दरअसल जिस समाज में हम पलते बढ़ते हैं, उसमें बचपन से ही ऐसी बहुत सी रीतियों प्रथाओं को देखते रहते हैं जिसके कारण हम खुद भी उनमें से कुछ को अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में शामिल कर लेते हैं। आपने अक्सर देखा होगा कि छोटे बच्चों को बुरी नजर से बचाने के लिए काला टीका लगा दिया जाता है या फिर मरते हुए किसी इंसान के मुँह में थोड़ा गंगाजल डाल दिया जाता है। क्या आपको लगता है कि किसी इंसान की पूरी जिंदगी में किए गए कर्मों का फल मौत के समय उसके मुंह में डाले गए गंगाजल से बदला जा सकता है?

मौत से जुड़ी एक और रोचक बात हमारे देश में देखने को मिलती है। भारत में किसी भी व्यक्ति की शवयात्रा के दौरान 'राम नाम सत्य है' का नारा लगाया जाता है। पर वही सब लोग श्मशान से वापस आते हुए ऐसा नहीं बोलते। या किसी घर में बिना किसी की मौत के कोई 'राम नाम सत्य है' बोल दे तो उसे डांट कर चुप करा दिया जाता है, यह कह कर कि यह अपशकुन है। अब अगर राम का नाम सत्य है तो वह तो हमेशा, हर परिस्थिति में सत्य है। राम का नाम सत्य बोलने में अपशकुन कैसा? और राम का नाम बोलने के लिए किसी के मरने का इंतजार क्यों करना है?

ऐसी हजारों अंधविश्वास की बातें हैं जो हम लोग जाने-अनजाने में रोज करते रहते हैं। तर्कों को परे रख कर हम भगवान से संबंधित किसी भी अंधविश्वास पर झट से विश्वास कर लेते हैं। विश्वास और अंधविश्वास के बीच एक महीन रेखा हमेशा रहती है और इसी का एक उदाहरण है ज्योतिष और उसके ईर्द-गिर्द चलता व्यापार। हम में से बहुत से लोग ज्योतिषियों के पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए अक्सर जाते रहते हैं। या किसी मंदिर में पूजा वगैरह करवा के इंसान अपनी परेशानी से निकलने की कोशिश करता है। कई बार किसी गंभीर बीमारी से जूझ रहे किसी व्यक्ति की सेहत में सुधार के लिए महामृत्युंजय मंत्र का जाप करवाया जाता है। लेकिन क्या किसी की मौत को सिर्फ एक मंत्र के जाप से टाला जा सकता है?

ज्योतिष भारतीय शास्त्रों में से एक प्रमुख शास्त्र रहा है। ज्योतिष अंधविश्वास नहीं, खगोल विज्ञान और प्रकृति पर उसके प्रभाव के रिसर्च का विषय है। ज्योतिष एक साइंस है। भविष्यवाणी से जुड़ा फलित भाग इस साइंस का एक बहुत छोटा हिस्सा है। ज्योतिष में इस हिस्से को बहुत ज्यादा प्रचारित नहीं किया जाता था। लेकिन मार्केटिंग की अंधी दौड़ में ज्योतिष का सहारा लेकर लोगों के डर और जिज्ञासा का फायदा उठाने की होड़ सी लग गयी। आइंस्टीन की रिलेटिविटी की थ्योरी के अनुसार अगर किसी भी चीज की गति प्रकाश की गति के बराबर कर दी जाए तो उस चीज के लिए समय रुक जाएगा और भविष्य में एक तरफा यात्रा शायद मुमकिन हो जाए। यह थ्योरी साइंस में अंधविश्वास नहीं कही जाती मगर ज्योतिष को अंधविश्वास कहा जाता है। हमारी धरती एक सौरमंडल का हिस्सा है जिसमें और भी कई बड़े बड़े ग्रह हैं। खगोल का प्रभाव पूरे भूगोल और प्रकृति पर पड़ता है। पुराने समय के ऋषियों ने सूर्य, चंद्र और दूसरे ग्रहों की गतिविधियों पर ध्यान दिया और उसके कारण धरती पर मौजूद प्राकृत तत्वों और इंसानों पर उन गतिविधियों और गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव पर रिसर्च की। आज की साइंस शून्य से शुरू नहीं हुई। इसने वैदिक समय के बहुत से सिद्धांतों की बुनियाद पर अपनी बिल्डिंग खड़ी की।

लेकिन ज्योतिष को अपने भविष्य का आइना समझ कर और उस पर अंधा विश्वास कर झूठे कर्मकांडों में उलझे रहना गलत है। शायद इसी चीज को भांप कर पुराने ऋषियों ने ज्योतिष के फलित भाग यानी भविष्यवाणी वाले भाग को ज्यादा प्रमोट नहीं किया। ज्योतिष का मूल उद्देश्य था कि फ्यूचर में होने वाली किसी अनहोनी घटना के प्रति सावधान हुआ जा सके और मानसिक रूप से मजबूत बना जा सके। जिंदगी का एक बहुत बड़ा कड़वा सच यह है कि पुराने कर्मों के अनुसार किसी इंसान की जिंदगी का जो प्रारब्ध निर्धारित है उसे बदलना किसी के लिए भी संभव नहीं है। इसलिए बेहतर यह है कि मुश्किल समय में हम मानसिक रूप से मजबूत रह कर उस समय को सकारात्मक रहकर बिताने की कोशिश करें। भगवान भी इस बात से खुश होते हैं कि हम झूठे और नकली उपायों की तरफ न भाग कर अपनी किस्मत में लिखे मुश्किल समय को स्वीकार करते हैं। महाभारत में अभिमन्यु के पिता अर्जुन थे जो कि खुद एक भगवद्प्राप्त भक्त एवं महापुरूष थे। अर्जुन के मामा और गुरू खुद साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्ण थे। और अभिमन्यु अधर्म की ओर से भी युद्ध नहीं कर रहे थे। फिर भी किशोर अवस्था में ही सात महारथियों द्वारा अभिमन्यु की निमर्म हत्या कर दी गई। क्या श्रीकृष्ण और अर्जुन अभिमन्यु को नहीं बचा सकते थे? या क्या सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण को यह पहले से नहीं पता था कि उस चक्रव्यूह में अभिमन्यु की मृत्यु होनी निश्चित है? श्रीकृष्ण यह सब जानते थे। इसी तरह राम अवतार में जब वह 14 वर्ष के वनवास के लिए गए तो उनके वियोग में उनके पिता राजा दशरथ का देहांत हो गया। राजा दशरथ श्रीराम के वियोग में पागलों की तरह उन्हें पुकारते थे और इसी दुख में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। क्या ऐसे महापुरूष जिन्हें स्वयं भगवान के पुरूषोत्तम अवतार का पिता बनने का पुण्य प्राप्त हुआ, उन्हें ऐसा वियोग प्राप्त होना चाहिए था? और क्या श्रीराम ऐसा होने से रोक नहीं सकते थे? वह यह सब जानते थे लेकिन भगवान प्रारब्ध में हस्तक्षेप नहीं करते।

इसलिए किसी पंडित या ज्योतिषी के बताने पर किसी पेड़ को धागा बांधने, गाय को रोटी खिलाने या एक हफ्ता हनुमान चालीसा पढ़ने से प्रारब्ध नहीं बदलेगा। गाय को रोटी उसकी भूख मिटाने के लिए खिलाइए और नियमित रूप से खिलाइए। पेड़ को धागा बांधने की बजाए नेचर को

सहेजने के प्रति सचेत रहिए।

हम लोग जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि और नवरात्रि वगैरह पर व्रत उपवास करते हैं। इस दौरान पुराने समय से चली आ रही परंपराओं के अनुसार लोग अन्न, नमक वगैरह का परहेज रख कर फलाहार भोजन लेते हैं। लेकिन उपवास की असली भावना और उद्देश्य को भुलाकर हम लोगों का सारा ध्यान बिना अन्न के पकवानों को बनाने और खाने की तरफ रहता है। मैं भी बचपन से ही जब जन्माष्टमी का उपवास करता था तो सारा ध्यान भूख पर और आधी रात के चाँद निकलने पर होता था। यह उपवास नहीं, आडंबर है। पुराने ऋषियों द्वारा व्रत उपवास वगैरह की परंपराएं बनाने का असली उद्देश्य था कि इंसान सात्विक खाना खाकर मन से भी सात्विक भाव रख सके और शुद्ध मन से भगवान की उपासना कर सके। जैसा उपवास हम लोग रखते हैं, उससे तो अच्छा है कि अपना मनपसंद खाना खा लिया जाये ताकि मन में कोई मलाल तो न रहे।

भगवान तक कैसे पंहुचा जाये

बड़ी लंबी लाइन है
क्या बात है भाई
शिवरात्रि है आज
पर इतना दूध?
भोले पर चढ़ाना है ना
अच्छा अच्छा
शिवरात्रि से याद आया
पिछली शिवरात्रि पे
कुछ बच्चियां मर गई
बेचारी भूख से
यहीं अपनी दिल्ली में
दूध कम चढ़ा होगा शायद
पिछली शिवरात्रि
वरना अपने दूध में से कुछ
दे देते भोलेनाथ
उन बच्चियों को

भारत में हजारों मंदिर, मस्जिद, तीर्थ स्थल वगैरह हैं। लाखों लोग रोज इन तीर्थ स्थानों में जाते हैं। कोई पूजा अर्चना के लिए, कोई मन्नत मांगने के लिए और कोई वापस आकर अपने पड़ोसियों को यह बताने के लिए कि उसने बारह ज्योतिर्लिंग और चार धाम की यात्रा पूरी कर ली है और अब उसकी मोक्ष की टिकट पक्की है। लेकिन क्या मंदिरों और तीर्थों के चक्कर लगाने से या फिर रामायण, सुंदर कांड और पुराणों वगैरह का पाठ करने से हम मोक्ष या भगवद्प्राप्ति के अधिकारी हो जाते हैं?

अमृतबिंदु उपनिषद में कहा गया है -

मन एव मनुष्याणां कारणम् बंध मोक्षयोः

जिसका मतलब है कि इंसान का मन ही उसके मोक्ष या बंधन का कारण है। वेद कहता है कि इंसान के किसी भी कर्म के पीछे रही उसकी मानसिक भावना को ही भगवान महत्व देते हैं और उसी के हिसाब से उसके पुण्य और पाप का बहीखाता तय होता है। अगर हम रोज मंदिर जा रहे हैं या धार्मिक पुस्तकों को पढ़ रहे हैं लेकिन अगर हमारा मन पूजा करते समय संसार के विषयों की तरफ ही भागता रहता है तो उस पूजा को भक्ति के कार्य में गिना ही नहीं जायेगा। शरीर से की गई भक्ति को वेद बहुत ज्यादा महत्व नहीं देता। मंदिरों में जाना, धार्मिक किताबें पढ़ना या भजन सुनना ये सब आंखों के या कानों के कर्म हैं। अगर मन भगवान की तरफ है ही नहीं तो यह सब किसी गिनती में नहीं गिना जा सकता। ऐसी भक्ति से भगवद्प्राप्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन हम लोग तो आम तौर पर इसी तरह भक्ति करते हैं। तो कैसी भक्ति की जाए जिससे भगवान को प्राप्त किया जा सके। इस बारे में भगवद्गीता कहती है -

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

मय्यर्पितमनो बुद्धिर्मामे वैष्यस्य संशयः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 8.7)

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरूषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 8.8)

इन दोनों श्लोकों में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हमें अपने कर्मों को भगवान को समर्पित करके अपने मन को भगवान में स्थिर कर देना चाहिए। जो इंसान भगवान का स्मरण करने में अपने मन को हमेशा लगाए रखता है, वह भगवान को जरूर प्राप्त करता है।

इसलिए मन से की गई भक्ति ही सबसे बेहतर है। मन से की गई भक्ति भगवान को सबसे अधिक प्रिय है। अगर आप हमेशा अपने मन में भगवान को याद रखते हैं और जिंदगी में कभी

किसी मंदिर, तीर्थ वगैरह नहीं जाते हैं या कोई भी ग्रंथ नहीं पढ़ते हैं तो भी आप भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान सरलता के भूखे हैं और सरल मन से ही उनका प्रेम और दर्शन पाया जा सकता है। भगवान को पाने के लिए मन में उनको पाने की व्याकुलता होनी चाहिए। जिस तरह अपने बच्चे से बिछड़ी माँ उसको पाने के लिए बेहद व्याकुल हो उठती है उसी तरह की व्याकुलता हमें अपने मन में भगवान के लिए जगाने की जरूरत है।

भक्तिरसामृत सिन्धु के अनुसार -

श्रुति स्मृतिपुराणादि पंचरात्रविधिं विना।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरूत्पातायैव कल्पते।।

(भक्तिरसामृत सिन्धु 1.2.101)

मतलब - वह भक्ति जो वेद, उपनिषदों और पुराणों जैसे वैदिक ग्रन्थों की अवहेलना करती है, वह भक्ति व्यर्थ है और समाज में अव्यवस्था फैलाने वाली है।

भगवान के जितने भी बड़े-बड़े भक्त हुए वे सब अपने सरल मन के कारण ही भगवान को प्राप्त कर पाए। महाभारत के युद्ध से पहले जब श्रीकृष्ण शांति दूत बन कर हस्तिनापुर गए तो दुर्योधन ने उन्हें शाम को अपने महल में रुकने का न्योता दिया। लेकिन श्रीकृष्ण ने एक ही झटके में दुर्योधन का न्योता ठुकरा दिया और दासी के बेटे महामंत्री विदुर के घर जाना पसंद किया। विदुर और उनकी पत्नी श्रीकृष्ण के बहुत बड़े भक्त थे। जब श्रीकृष्ण को खाना खिलाने का समय आया तो श्रीकृष्ण के स्वरूप को देखने में विदुर जी की पत्नी इतना खो गयी कि उन्हें केले की जगह केले के छिलके खिलाने लगी और बिना नमक का खाना परोसने लगी। लेकिन श्रीकृष्ण ने सिर्फ मन की सरलता को अहमियत दी और बड़े चाव से केले के छिलके और बिना नमक का खाना खा लिया। मन की सरलता का एक और उदाहरण है सदन कसाई जो पेशे से एक कसाई था लेकिन भगवान कृष्ण का बहुत बड़ा भक्त था। वह अपनी दुकान में मांस तोलने के लिए बाट के तौर पर शालिग्राम का उपयोग करता था। लेकिन यह उसके मन की सरलता ही थी कि श्रीकृष्ण ने उसके पास हमेशा उसी बाट रूप में रहना बेहतर समझा।।

इन उदाहरणों से यह तो पता चलता है कि सरल और समर्पण भाव से भगवान को पाया जा सकता है और कर्मकांड की भक्ति में न फंस कर सिर्फ साफ मन से की गई भक्ति ही सबसे अच्छी है। लेकिन सवाल यह उठता है कि ऐसी भक्ति कैसे की जाए क्योंकि हम तो संसार में कर्मकांड वाली भक्ति ही देखते और अनुभव करते हैं।

भगवान की उपासना करने का नियम बड़ा ही सरल है। भगवान को याद करने के लिए हमें नहा धो कर और स्वच्छ जगह चुन कर हाथ में माला लेकर बैठने की जरूरत नहीं है। हमें समय या परिस्थिति का ध्यान रखने की भी कोई जरूरत नहीं है। जरूरत सिर्फ यह है कि चैबीस घंटे में जब भी हमें थोड़ा सा भी टाइम मिले तो हम अपने मन में यह रियलाइजेशन (आभास) रखें कि भगवान हमारे हृदय में बैठा हुआ है और हमारे हर कर्म को श्वेताश्वर उपनिषद में बताये गए पक्षी की तरह चुपचाप बैठा देखता रहता है और हमारे कर्मों के बहीखाते में उसको दर्ज करता रहता है। बार-बार हम अपने आप को उस पापी जैसा महसूस करें जिसका सबसे बड़ा पाप यही है कि वह

अब तक भगवान से विमुख रहा है। हम भगवान से सिर्फ उनका दर्शन और स्नेह मांगे, और कुछ भी नहीं। यहां तक कि हम उनसे मोक्ष की भी कामना न करें। शार्ट में कहा जाए तो हम अपने सुख की नहीं बल्कि भगवान के सुख की कामना के साथ भक्ति करें। भगवान सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है इसलिए हमारे लिए क्या सबसे बेहतर है, यह निर्णय वह अपने आप ले लेगा। यही भक्ति हमें करनी है।

सेक्स वर्सेज अध्यात्म

प्रेम भौतिक नहीं, दिव्य है

प्रेम तृप्ति नहीं, त्याग है

प्रेम वासना नहीं, उपासना है

प्रेम बंधत्व नहीं, आनंद है

प्रेम मां है

प्रेम वात्सल्य है

प्रेम आंसू है

प्रेम विरह है

प्रेम भक्ति है

प्रेम राधा है

प्रेम कृष्ण है

भगवान ने हमारा शरीर बड़ी ही खूबसूरती से बनाया है। यह शरीर स्थूलता और सूक्ष्मता का एक बेजोड़ संगम है। स्थूल ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की मदद से यह शरीर अपने सारे काम करता है लेकिन इन इन्द्रियों को निर्देश वह मन और बुद्धि देते हैं जो सूक्ष्म हैं और जिनको हम अपने चिंतन और संयम वगैरह से दिशा दे सकते हैं। भगवान ने जितने भी बाहरी और अंदरूनी अंग शरीर में बनाये हुए हैं उनमें से हर एक का एक निश्चित दायित्व है। भगवान ने हमारे शरीर में कोई भी अंग ऐसा नहीं डाला जो सिर्फ होने के लिए हो और जिसका शरीर को चलाने में कोई रोल न हो। इन्हीं अंगों में प्रजनन की इन्द्रियाँ भी शामिल हैं जो पुरुष और महिला दोनों के शरीरों में मौजूद हैं। इन इन्द्रियों का जिक्र मैं इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि सेक्स और अध्यात्म को लेकर हम लोग हमेशा मतभेदों में उलझे रहते हैं। बहुत सी विचारधाराएं शारीरिक संबंध से परहेज को पवित्रता का पैमाना बना देती हैं। ऐसे संगठन सामान्य लोगों को सेक्स से पूरी तरह से किनारा कर लेने को प्रेरित करते हैं। लेकिन सेक्स, प्रजनन और इन्द्रिय-भोग को जरा व्यापक नजरिये से देखने की जरूरत है।

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रजनन नहीं होगा तो सृजन नहीं होगा । यह सृष्टि चलायमान ही इस वजह से है कि इंसान और पशु दोनों ही प्रजनन करते हैं। अगर ऐसा नहीं किया गया तो संसार कुछ ही सालों में खत्म हो जायेगा, सृष्टि बचेगी ही नहीं। इसलिए व्यापक नजरिये से देखा जाये तो ईश्वर ने जीव को प्रजनन की शक्ति देकर उसे सृष्टि को आगे बढ़ाते रहने की जिम्मेदारी सौंपी हुई है। सनातन धर्म के अनुसार मनुष्य जाति की शुरुआत भी आदि मनुष्य मनु और शतरुपा के संयोग से हुई। पुरुष और स्त्री का संयोग एक पवित्र क्रिया है, पर तब तक जब तक हम अपनी दूषित सोच से इसको पाप की संज्ञा न देने लगें।

भगवद्गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं -

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.11)

मतलब - मैं बलवानों का कामनाओं तथा इच्छा से रहित बल हूँ। हे अर्जुन, मैं वह काम हूँ जो धर्म के विरुद्ध नहीं है।

इसलिए पुरुष और स्त्री का विवाह रुपी संस्था से बाहर न जाने वाला संयोग निंदित नहीं बल्कि संसार की प्रक्रिया का हिस्सा है। हमें इसे अपनी सीमित सोच के दायरे में बाँधने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

लेकिन एक बात यह भी है कि हर शक्ति के साथ जिम्मेदारी जुड़ी होती है और हर जिम्मेदारी के साथ मर्यादा और नियम जुड़े होते हैं। हमारी रसना इन्द्रिय यानी हमारी जीभ के पास प्रकृति

से मिली यह शक्ति है कि वह हमें मुख में डाले गए खाने के स्वाद की पहचान कराती है। कड़वेपन, मिठास, तीखेपन जैसे स्वाद के अनुभवों से हमें हमारी जीभ ही अवगत कराती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम जीभ के स्वाद के आगे बेबस होकर उटपटांग खाना अपने शरीर में डालते रहें। अगर हम ऐसा कर भी लें तो इसका खामियाजा हमारे शरीर को खराब सेहत के रूप में भुगतना पड़ता है। शरीर के दूसरे अंगों की भी अपनी अपनी मर्यादाएं हैं। आप लगातार जागते रहेंगे तो यह प्रकृति आपको दंड देगी। आप बीमार हो जायेंगे। आप बिलकुल एक्सरसाइज न करें या आप लगातार एक्सरसाइज ही करते रहें, दोनों ही सूरतों में आप बीमार हो जायेंगे। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने साफ तौर पर यह बात कही है कि योगी वही है जो सोने-जागने, खाने-पीने और आमोद-प्रमोद की आदतों में बैलेंस बना के रखता है। यही बात सेक्स पर भी लागू होती है। यह शरीर की एक प्राकृतिक क्रिया है। लेकिन नियमों से बाहर जाकर स्थापित किया गया संबंध निंदा के लायक है। विवाह के इतर कोई भी संबंध न कानून में मान्य है, न नैतिकता के धरातल पर।

हालांकि कामेच्छा को जबरदस्ती दबाने से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता। शरीर के अंदर रासायनिक क्रियाएं कर रहे हॉर्मोन्स को क्या आप अपने शरीर से निकाल कर फेंक सकते हैं? भगवान ने भगवद्गीता में यह भी कहा है कि इन्द्रियों का जबरदस्ती दमन करके संयमी बनने की कोशिश करने वाला इंसान योगी नहीं, मिथ्याचारी है। वैराग्य मन को ईश्वर की तरफ मोड़ कर प्राप्त किया जाता है, इन्द्रियों का जबरदस्ती दमन करके नहीं। गृहस्थ जीवन में रह कर भगवान को प्राप्त करने की कामना रखने वाले सामान्य इंसान के लिए कामेच्छा की पूर्ति करते हुए भी भगवान तक पहुंचना मुमकिन है, बशर्ते वह काम मर्यादा के बंधनों को न तोड़ता हो।

काफी लोग सेक्स की इच्छा पर कंट्रोल करने को ब्रह्मचर्य से जोड़ते हैं। लेकिन पहले जरा ब्रह्मचर्य का मतलब जान लिया जाए। ब्रह्मचर्य दो शब्दों से मिलकर बना है - ब्रह्म और चर्य, मतलब ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जीवन बिताना। इसलिए ब्रह्मचर्य का दायरा हमारी सोच से कहीं बड़ा है। इसे सेक्स के कंट्रोल तक सीमित रखना ठीक नहीं है। हालांकि योग और आयुर्वेद कहता है कि वीर्य ओज का प्रतीक है और उसके संचय से आंतरिक कांति बढ़ती है। लेकिन सोचने वाली बात यह है कि वीर्य का संचय उन लोगों के लिए जरूरी बताया गया है जो ज्ञानयोग और संन्यास के मार्ग से ही ईश्वर को पाने की कोशिश करते हैं। वे लोग जो गृहस्थी में रहते हैं और जिनके लिए कठोर साधना मुमकिन नहीं है, ऐसे लोग कड़े नियमों का पालन नहीं कर पाते। इसलिए भक्ति मार्ग पर चलते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोई बंदिश नहीं है। सिर्फ और सिर्फ मन की शुद्धि ही भक्ति मार्ग पर उन्नति करने का एकमात्र तरीका है। सिर्फ अपने जीवनसाथी के प्रति ईमानदारी रखते हुए मर्यादित संबंध रखना ही इंसान से अपेक्षित है। इन बंधनों के परे जाकर अमर्यादित सेक्स के पीछे भागने वाले इंसान की उन्नति नहीं हो सकती, वह निंदित है।

कुछ और संगठन कामेच्छा से परहेज को पवित्रता का पैमाना बताते हैं। उनके सिद्धांतों के अनुसार शारीरिक संबंध रखने वाले कपल अपवित्र हैं और आध्यात्मिक मार्ग पर उन्नति नहीं कर सकते। पर हम सब यह भूल जाते हैं कि हमारा शरीर अपने आप में ही अपवित्र है। हम लोग कुछ देर गर्मी में बैठ जाएं तो हमारे शरीर से दुर्गंध भरा पसीना निकलने लगता है। पेट साफ न हो तो

हमारी आँतों में मल सड़ता रहता है और हमारे शरीर को दूषित करता है। हमारे शरीर में इतनी सारी क्रियाएं होती हैं जो ढेर सारे टॉक्सिन्स बनाती हैं। क्या हम अपने शरीर में बन रहे मूत्र और मल का बनना बंद कर सकते हैं? नहाने से सिर्फ चमड़ी की शुद्धि होती है। हमारा मन और बुद्धि अपने आप में इतना मलिन है कि भक्ति के अलावा किसी और कोशिश से साफ हो ही नहीं सकता। इसलिए सिर्फ कामेच्छा को दबा कर पवित्रता का आडंबर नहीं किया जा सकता। पवित्र वह है जो गुस्से, द्वेष, लालच, अमर्यादित आचरण वगैरह पर कंट्रोल कर ले। एक व्यक्ति सेक्स न करे लेकिन दूसरी महिलाओं को बुरी नजर से देखे तो वह पवित्रता का पालन नहीं, ढोंग करता है। और देखा जाए तो भगवान को हमसे शरीर की पवित्रता चाहिए भी नहीं। उनका शरीर पांच तत्वों से परे, एक दिव्य शरीर है। उस पवित्र शरीर के आगे तो हम ठहर भी नहीं सकते, तो पवित्रता कहाँ से लाएंगे। इसलिए सारे आडंबरों को छोड़कर अपने अंतःकरण को शुद्ध करना और निश्छल मन से भगवान के प्रति शरणागति ही आध्यात्मिक उन्नति करने का एकमात्र रास्ता है। जीवन का मूल उद्देश्य पशुत्व से मनुष्यत्व और वहां से देवत्व की ओर जाना है। काम वासना, जो मूलाधार चक्र पर केंद्रित रहती है, से ऊपर उठकर अपने जीवन को सहस्रार चक्र तक पहुँचाना ही जीवन की असली उन्नति है।

सरल बनें या चाणक्य

सीधा रास्ता लंबा है
फिसलन भरा
चलूँ या न चलूँ
बिखरा पड़ा है
उस रास्ते पर
बहुत सी शिकस्तों का गम
डर लगता है
कहीं गिर न पड़ूँ
चलने लायक ही न बचूं
पर एक खासियत है
इस रास्ते से
मंजिल जरूर नजर आती है

दूसरे रास्ते पर
पक्की सड़क है
कामयाबियों की चकाचैंध है
पर मोड़ बड़े हैं
गुनाहों के चैराहे हैं
कहीं भटक न जाऊँ
मंजिल का भरोसा नहीं

पर सफर आरामदायक है
क्या करूँ

ये बीच का रास्ता कैसा है
उम्मीदों की मशालें लगी हैं यहाँ
संतोष की छांव भी है
थोड़ा पथरीला जरूर है
पर कुछ पेड़ लगे हैं
सुकून के

चलना चाहिए
रात न हो जाये
दिन ढलने से पहले
मंजिल तक पहुंचना है

ईश्वर को प्राप्त करने वाला भक्तिमार्ग कहता है कि इंसान को वृक्ष से भी बढ़कर सहिष्णु होना चाहिए। उसे हर जीव में स्थित परमात्मा को ही देखना चाहिए और किसी भी दूसरे जीव के प्रति घृणा, द्वेष और अहंकार का भाव नहीं रखना चाहिए। दूसरे इंसान की निंदा करना तो दूर, उसकी निंदा के बारे में सोचना भी भक्ति साधना के दौरान पतन का कारण बनता है। जो लोग सरल होते हैं और ज्यादा चपलता नहीं जानते उनके लिए भगवान की तरफ चलना ज्यादा आसान होता है। ज्ञानी लोग कहते हैं कि या तो इंसान इतना सरल हो कि उसे जैसा करने को कहा जाये वह बिना अपनी बुद्धि लगाए वैसा करने के लिए तैयार हो जाये। ऐसे इंसान को कोई सच्चा गुरु मिल जाए तो वह बड़ी जल्दी भगवद्प्राप्ति कर सकता है। या फिर इंसान इतना ज्यादा ज्ञानी हो कि उसे हर वेद शास्त्र का ज्ञान हो और वह यह समझ जाए कि अहंकार को त्याग कर और शास्त्रों के ज्ञान को एक तरफ रख कर दीन भाव से भगवान की तरफ चलने से ही उनकी प्राप्ति हो सकती है।

सतपुड़ा के जंगल में अनेक प्रकार के पेड़ों में दो पेड़ नजदीक थे। एक सरल-सीधा चंदन का पेड़ था और दूसरा टेढ़ा-मेढ़ा पलाश का वृक्ष था। पलाश पर फूल थे। उसकी शोभा से जंगल भी शोभित था। चंदन का स्वभाव अपनी आकृति के अनुसार सरल और पलाश का स्वभाव अपनी आकृति के अनुसार घुमावदार और कुटिल था, लेकिन फिर भी दोनों अच्छे मित्र थे। हालाँकि दोनों का स्वभाव अलग था पर चूंकि दोनों का जन्म एक ही स्थान पर साथ ही हुआ था इसलिए दोनों सखा थे।

एक बार कुछ लकड़हारे कुठार लेकर जंगल में घुस आए। चंदन का पेड़ उन्हें देखकर सहम गया। पलाश उसे और ज्यादा डराते हुए बोला - "सीधे वृक्ष को हमेशा काट दिया जाता है। ज्यादा सीधे व सरल रहने का जमाना नहीं है। टेढ़ी उँगली से ही घी निकलता है। देखो सरलता के कारण तुम्हारे ऊपर संकट आ गया जबकि मुझसे सब दूर ही रहते हैं।"

चंदन का पेड़ धीरे से बोला - "भाई, संसार में जन्म लेने वाले सभी लोगों का आखिरी समय आता ही है। लेकिन मुझे इस बात का दुख है कि तुमसे जाने कब मिलना होगा। चलो अब चलता हूँ। मुझे भूलना मत। भगवान ने चाहा तो फिर मिलेंगे। मेरे न रहने का दुख मत करना। आशा करता हूँ दूसरे सभी पेड़-पौधों के साथ तुम भी फलते-फूलते रहोगे।"

लकड़हारों ने चंदन के पेड़ पर आठ-दस प्रहार किए। चंदन उनके कुल्हाड़े को सुगंधित करता हुआ सद्गति को प्राप्त हुआ। उसकी लकड़ी ऊँचे दाम में बेची गई। भगवान की काष्ठ प्रतिमा बनाने वाले ने चंदन की लकड़ी से बाँके बिहारी की मूर्ति बनाकर बेच दी। मूर्ति प्रतिष्ठा के अवसर पर यज्ञ-हवन का आयोजन रखा गया। बड़ा उत्सव होने वाला था।

मूर्ति प्रतिष्ठा के यज्ञ के लिए लकड़ी की जरूरत महसूस हुई। लकड़हारे लकड़ी की तलाश में उसी जंगल में गए। उन्हें देखते ही पलाश का पेड़ कांपने लगा। उसे लकड़हारों के रूप में

यमदूत नजर आने लगे। अपने पड़ोसी चंदन के पेड़ की अंतिम बातें याद करते हुए पलाश परलोक सिधार गया। उसके छोटे-छोटे टुकड़े होकर यज्ञशाला में पहुँचे।

यज्ञ मण्डप में पलाश को आया देख काष्ट मूर्ति बना हुआ चंदन बोला - "आओ मित्र, ईश्वर की इच्छा बड़ी बलवान है। फिर से तुम्हारा हमारा मिलन हो गया। वन के बाकी पेड़ों का कुशल मंगल सुनाओ। मुझे वन की बहुत याद आती है। मंदिर में पंडित मंत्र पढ़ते हैं और मैं मन में जंगल को याद करता हुआ रहता हूँ।"

पलाश बोला - "देखो, यज्ञ मंडप में यज्ञाग्नि प्रज्जवलित हो चुकी है। लगता है कुछ ही पल में मैं राख हो जाऊँगा। अब हम कभी नहीं मिल सकेंगे। मुझे डर लग रहा है। अब बिछड़ना ही पड़ेगा।"

चंदन ने कहा - "भाई मैं सरल व सीधा था इसलिए मुझे परमात्मा ने अपना आवास बनाकर धन्य कर दिया। तुम्हारे लिए भी मैंने भगवान से प्रार्थना की थी इसलिए यज्ञ के कार्य में देह त्याग रहे हो नहीं तो जंगल की आग में जल मरते। सरलता भगवान को प्रिय है। अगला जन्म मिले तो सरलता, सीधापन मत छोड़ना। सज्जन कठिनता में भी सरलता नहीं छोड़ते जबकि दुष्ट सरलता में भी कठोर हो जाते हैं। सरलता में तनाव नहीं रहता। तनाव से बचने का बस एक उपाय सरलता पूर्ण जीवन है।

तुलसीदास की रामचरितमानस में भगवान ने खुद ही कहा है -

निरमल मन जन सो मोहिं पावा।

मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥

मतलब - जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।"

चंदन की बातें सुनकर पलाश का मुख एक आध्यात्मिक दीप्ति से चमक उठा।

हालाँकि सरल होना एक उच्च संस्कार है लेकिन आम जिंदगी में बहुत ज्यादा सरल होना कभी कभी नुकसान का कारण बन सकता है। अगर कोई व्यक्ति आम व्यवहार में बहुत ही स्पष्ट और सरल हो तो लोग ऐसे व्यक्ति का फायदा उठाने लगते हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी में थोड़ा बहुत कूट-नीतिक और व्यवहार कुशल होना समय की मांग बन जाती है।

आचार्य चाणक्य ने कहा है -

अगर कोई सांप जहरीला नहीं है तो भी उसे फुफकारना नहीं छोड़ना चाहिए। उसी तरह से कमजोर व्यक्ति को भी हर वक्त अपनी कमजोरी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

किसी पर अत्याचार करना हिंसा के अंतर्गत आता है लेकिन अपने बचाव में हथियार उठाना जायज बताया गया है। कानून भी कुछ विशेष परिस्थितियों में आत्मरक्षा के लिए हथियार उठाने की परमिशन देता है। अगर इंसान खुद के साथ अत्याचार और शोषण को सहता है तो वह भी निंदनीय है। इस समाज में जो जैसा करता है उसके साथ वैसा करना हमारी मजबूरी बन जाती है
।

तो इन दोनों परस्पर विरोधी तर्कों में किसके हिसाब से जिंदगी जी जाये? सरल और स्पष्ट व्यवहार के साथ जिया जाये या चाणक्य की तरह चपलता और कूटनीति के सहारे आगे बढ़ा जाए? इसका जवाब बिलकुल क्लियर तो नहीं दिया जा सकता लेकिन कहीं न कहीं इन दोनों विचारधाराओं के बीच एक बैलेंस बना कर ही एक शांत और उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त जीवन की कल्पना की जा सकती है। इंसान की कोशिश यह होनी चाहिए कि उसके कारण किसी और व्यक्ति या जीव को कष्ट न पहुंचे। वह अपने स्वार्थ के वशीभूत ऐसा कोई काम न करे जिससे किसी और का नुकसान हो। वह हर दूसरे जीव में भगवान को ही बैठा हुआ देखे। लेकिन व्यवहार में जरा रक्षात्मक रहे। वह इस चीज के प्रति सावधान और सजग रहे कि सामने वाला व्यक्ति उसकी नम्रता और ईमानदारी का गलत फायदा उठाने की फिराक में तो नहीं है। वह चाणक्य के सिद्धांत का इस्तेमाल अपना नुकसान न होने देने के लिए तो करे लेकिन दूसरे के प्रति गलत करने के लिए न करे। अपने अंदर ऐसे व्यवहार की क्षमता को विकसित करना आसान तो नहीं है लेकिन नामुमकिन भी नहीं है। ऐसे व्यवहार के लिए व्यक्ति को थोड़ा सा अभिनय करना आना चाहिए। मसलन मान लीजिये कि आप शराब नहीं पीते और आप ऐसे दोस्तों के ग्रुप में बैठे हुए हैं जिसमें लगभग सभी लोग ड्रिंक करते हैं। आप का कोई जिगरी दोस्त या जिस कंपनी में आप काम करते हैं उसका प्रेजिडेंट आप से एक ड्रिंक लेने की जिद कर बैठता है। हो सकता है आप अपने दोस्त या प्रेजिडेंट साहब के साथ अपने संबंध को कटुता के स्तर पर न ले जाना चाहते हों लेकिन आप ड्रिंक भी नहीं करना चाहते। ऐसे में जरूरत से ज्यादा सरल होना नुकसानदेह हो सकता है। ऐसे में बेहतर है कि आप सामने वाले व्यक्ति के ड्रिंक के ऑफर को मजाकिया लहजे में कोई गुदगुदाने वाला बहाना बना कर टाल जाएं। और इस चीज के लिए व्यक्ति में वाकपटुता और चपलता जैसे गुण होना जरूरी है। एक और उदाहरण लेते हैं। मान लीजिये आप सड़क पर जा रहे हैं और कोई बदमाश किसी निर्बल पर जोर आजमाइश कर रहा है या उसको लूटने की कोशिश कर रहा है। ऐसे में न्यायसंगत यह है कि उस निर्बल व्यक्ति की मदद की जाये या पुलिस को कॉल किया जाये। लेकिन इसके बावजूद हमारे अंतःकरण में अत्याचार कर रहे बदमाश के प्रति घृणा और निंदा का भाव नहीं आना चाहिए। निंदनीय से भी निंदनीय व्यक्ति के प्रति हमारे मन में घृणा का भाव हमारे पतन का कारण बनता है। परदोष की आदत से हमें बचना चाहिए।

कहने का तात्पर्य है कि बाहरी रूप से हम चैकन्ने भी रहें, व्यवहार कुशल और कूटनीतिक भी रहें और अपना नुकसान भी न होने दें मगर हमारे मन के अंदर सिर्फ सहिष्णुता, दीनता और भगवान का ज्यादा से ज्यादा चिंतन चलना चाहिए। इस तरह हम अपने सामाजिक संबंधों को बिना बिगाड़े और ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य से बिना समझौता किये एक बैलेंस बना कर जीवन जी सकते हैं।

चाय पर चर्चा

बड़ा इंतज़ार करवाया तूने
इस मुलाकात का ऐ ख़ुदा
अब कुछ देर पीछे खड़ा रह
मैं ज़रा अपने आप से मिल रहा हूँ

(यह घटना श्रीकृष्ण के चरित्र वर्णन को रोचक बनाने के लिए उनके साथ बातचीत और साक्षात्कार की एक कोरी कल्पना भर है, लेकिन उनके सौंदर्य, चरित्र, विशेषताएं, गुण वगैरह का एक-एक शब्द शाश्वत सत्य है)

अगस्त की बारिश में शनिवार शाम को अपने कमरे की खिड़कियां और दरवाजे खोलकर आलस से भरा हुआ मैं सोफे पर बैठा हुआ, मिट्टी की जो सौंधी खुशबू निकल रही थी, उसकी महक में आत्मा की तृप्ति ढूंढ रहा था। अदरक-इलायची और कम चीनी वाली चाय का प्याला पकड़े उस ठंडक भरे मौसम में मैं पैर पर पैर रखकर अपने को अकर्मा सा महसूस कर रहा था। कुछ देर ऐसे ही बैठे-बैठे मैं हल्की झपकी के आगोश में जाने ही वाला था कि गेट पर किसी के आने की आहट सुनाई दी। मैंने प्याला मेज पर रख कर जैसे ही बाहर की तरफ झांका तो एक 16-17 साल का, छरहरे बदन वाला किशोर युवक मेरे सामने खड़ा था। उसका रंग सांवले बादल और नीले आकाश के रंगों का मिश्रण सा था। उसका चेहरा इतना सुंदर था जैसे सौ कामदेव एक साथ स्वर्ग से मेरे सामने उतर आये हों। कुछ सेकेंड तक मैं उसको मंत्रमुग्ध होकर देखता ही रहा। जब थोड़ा संभला तो पूछा कि आप कौन हैं?

उस युवक ने कहा - "घर में आने को नहीं कहोगे?"

मैं समझ गया था कि यह कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं है। मैंने उसे आदर सहित अंदर आने को कहा और उसके लिए भी एक कप चाय बना लाया। युवक ने चाय का कप उठाया और बड़े आनंद से उसकी चुस्की लेने लगा। मैं उसकी मुस्कान को ही देखे जा रहा था। उसकी मुस्कान को देखकर मन को ऐसा सुख मिल रहा था जैसे लू की गर्मी में तपते हुए शरीर को किसी घने पेड़ की छाया मिल जाए।

कुछ देर के सन्नाटे के बाद मैंने उस युवक से पूछा - "तुम मुझे कोई आम इंसान तो नहीं लगते। तुम्हारे चेहरे पर एक आभा है जो अपनी तरफ खींचती है। कौन हो तुम?"

युवक ने मुस्कुराते हुए अपनी मीठी आवाज में कहा -"मैं कृष्ण हूँ, यशोदानंदन कृष्ण।"

मेरा मुंह खुला का खुला रह गया। मेरे शरीर के सभी रोम खड़े हो गए और मेरी आंखों से आंसू बह निकले। मेरे हाथ पैर कांपने लगे और चाय का कप मेरे हाथ से छूट गया। मैं जिस घटना का साक्षी बन रहा था, वह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था।

मैंने अपना सारा हौंसला बटोरते हुए उनके पैर पकड़ लिए और कहा - "मुझे नहीं पता कि मेरी किस्मत में यह सुख कैसे लिखा हुआ था लेकिन खुद परब्रह्म भगवान् कृष्ण मेरे सामने खड़े हैं, अब मुझे जिंदगी से और क्या चाहिए?"

मुझे अभी भी सामने हो रही घटना पर भरोसा नहीं हो रहा था।

इसी तरह जब कुछ देर और बीत गई तो मैंने श्रीकृष्ण से कहा - "जब आपने मुझ पर इतनी बड़ी कृपा कर ही दी है तो क्या मैं एक निवेदन कर सकता हूँ?"

"तुम्हारे उसी निवेदन को पूरा करने तो मैं आया हूँ" श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा।

मैंने कहा कि बड़े लंबे समय से कुछ सवाल हमेशा से मेरे दिमाग में घूमते आये हैं, आप के अलावा उन सवालों के जवाब कौन बेहतर दे सकता है। उन्होंने धीमे से हामी में गर्दन को हिला दिया और उसके बाद शुरू हुई मेरी श्रीकृष्ण से चाय पर चर्चा। मैंने उनसे कुछ सवाल पूछे जिनके जवाब उन्होंने बड़ी सहजता और स्पष्टता से दिए।

प्रश्न: क्या आप पांच हजार साल पहले इस धरती पर आए थे?

श्रीकृष्ण: मैं हर द्वापर युग के आखिर में धरती पर आता हूँ। एक कल्प में एक हजार द्वापर युग होते हैं, मैं उन सब में युगावतार कृष्ण रूप में अवतार लेता हूँ। हर कल्प में एक बार मैं अपने असली स्वरूप में आता हूँ। वह मेरा अंशावतार नहीं होता बल्कि मैं खुद ही धरती पर आता हूँ। पांच हजार साल पहले जो द्वापर युग खत्म हुआ है, उसमें मैं अपने असली स्वरूप में ही अवतरित हुआ था।

प्रश्न: आप तो हर इंसान के भीतर परमात्मा रूप में बैठे रहते हैं इसलिए आप किसी भी पापी इंसान का खात्मा उसके भीतर बैठे बैठे ही कर सकते हैं। फिर आप ने भगवद्गीता उपदेश में ऐसा क्यों कहा कि जब-जब धर्म की हानि होती है तो मैं दुष्टों का संहार करने और संतों की रक्षा के लिए अवतार लेता हूँ?

श्रीकृष्ण: यह बात बिल्कुल सही है कि मैं एक इंसान तो क्या, पूरे संसार का प्रलय सिर्फ सोचने भर से कर देता हूँ। हर जीव के भीतर भी मैं हूँ, यह भी एक सच है। लेकिन मेरे अवतार लेने के कुछ और उद्देश्य भी हैं। वे सब हैं मर्यादा के आदर्श स्थापित करना जिसका अनुसरण समाज कर सके। जब मैं भूमि पर चलता हूँ तो धरती मेरे चरण पड़ने से गद्गद हो उठती है। धरती सब जीवों का भरण पोषण करती है। इसलिए उसका वह कर्ज चुकाने भी मैं आता हूँ। और सबसे बड़ा उद्देश्य है लीलाएं वगैरह करके उन भक्तों को आनंद देना जो वर्षों तक इसके लिए कठोर साधना करते हैं। अपने भक्तों को अपनी लीलाओं से तृप्त करने के लिए ही मैं आता हूँ।

प्रश्न: हम किसकी पूजा करें? आपकी या शिव जी की या शक्ति की या देवताओं की? आपके साकार रूप को पूजें या निराकार ब्रह्म की उपासना करें?

श्रीकृष्ण: मेरी पूजा मत करो, बस मुझसे प्रेम करो। मैं कर्मकांड को नहीं मानता, मैं तो बस भाव को स्वीकार करता हूँ। तुम मुझे चाहे दोस्त बना लो, चाहे प्रियतम मान लो या चाहे बेटा या स्वामी मान लो। मैं हर रिश्ते के अनुसार तुम्हारे साथ रहूँगा। गीता में मैंने अर्जुन को बताया था कि विष्णु, राम, शिव, ब्रह्मा सब मैं ही हूँ। तुम मेरे किसी भी रूप की उपासना कर लो, तुम आखिर में मुझको ही प्राप्त करोगे। मेरे किसी भी रूप को पूजने वाले भक्त का मैं योगक्षेम वहन करता हूँ

यानी उसके जीवन की जो जरूरत होती है, उसको पूरा करता हूँ और जो कुछ उसके पास होता है, उसकी रक्षा करता हूँ। यही नहीं, अगर तुम मुझे प्राप्त कर चुके संतों की भक्ति करोगे तो भी मुझे प्राप्त कर जाओगे। इसलिए दुविधा में मत पड़ो, डरो मत।

प्रश्न: मैंने पढ़ा है कि लगभग पाँच हजार साल पहले आप करीब सवा सौ साल धरती पर रहे और इस पूरे समय में आप बूढ़े नहीं हुए। आपकी उम्र हमेशा किशोर अवस्था की ही रही। क्या यह सच है?

श्रीकृष्ण: (हंसते हुए) हां, मैंने करीब सवा सौ साल द्वापर के अंत में धरती पर बिताये। चूंकि मेरा शरीर आप लोगों की तरह प्राकृत नहीं बल्कि दिव्य है इसलिए यह हमेशा किशोर रूप में रहता है। मुझे पसीना नहीं आता, भूख-प्यास नहीं लगती, मेरी मौत नहीं होती, मेरे शरीर से सुगंध आती है और मेरे रूप को जो भी देख ले उसको महान सुख की अनुभूति होती है। अनंत ब्रह्मांडों के सभी जीवों के कर्म संस्कारों का हिसाब रखते हुए भी मैं हमेशा आनंदमयी रहता हूँ।

प्रश्न: सब लोग आपकी संतान हैं, फिर आप उनकी किस्मत में दुख कैसे लिख सकते हैं या उनके साथ अन्याय होते हुए कैसे देख लेते हैं?

श्रीकृष्ण: मैं किसी इंसान की किस्मत में दुख या सुख लिखने वाला कोई नहीं हूँ। उन्हीं के कमाए हुए पाप और पुण्य कर्म से मैं उनकी किस्मत निर्धारित करता हूँ। मैं तो केवल न्यायाधीश की तरह काम करता हूँ। मेरा न कोई दोस्त है न दुश्मन। मैं किसी से द्वेष नहीं करता, मैं तटस्थ रहता हूँ। जहां तक अन्याय की बात है तो वह अन्याय नहीं नियति है। लेकिन फिर भी मेरा नियम है कि अगर इंसान मेरे प्रति शरणागत हो जाए तो मैं उसके सारे पाप खत्म करके उसके आगे का ठेका उठा लेता हूँ।

प्रश्न: अगर इस जन्म में हम भगवद्प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाए तो क्या सारी मेहनत बेकार चली जाएगी?

श्रीकृष्ण: मेरे शरणागत होने वाले का पतन तो हो ही नहीं सकता। अगर तुम भक्ति मार्ग पर मेहनत करते हो तो तुम जितनी भी शरणागति इस जन्म में करोगे, मैं उसे नष्ट न करके अगले जन्मों में उसका फल दूंगा। मैं तुम्हें ऐसे परिवार में जन्म दूंगा जहां तुम्हें संतों का संग मिले या भक्ति का माहौल मिले। फिर मैं अपनी चेतना शक्ति से तुम्हारे मन में फिर से वह प्रेरणा स्थापित कर दूंगा कि तुम खुद ही उससे आगे की मेहनत करके मुझ तक पहुंचने की कोशिश करोगे।

प्रश्न: राधा जी असलियत में कौन हैं?

श्रीकृष्ण: जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में एक आत्मा है और उस आत्मा में स्थित मैं परमात्मा हूँ, ठीक उसी प्रकार राधा मेरी आत्मा है। वह मेरी स्वामिनी भी हैं और मेरी सबसे श्रेष्ठ भक्त भी हैं। राधा मेरा ही स्वरूप है। मैं और राधा अलग नहीं हैं, हम एक ही हैं।

शरणागति

जुए की अंतिम बाज़ी में
शकुनि ने फिर से कपट किया
दुर्योधन बाज़ी ले जीता
दुशासन को आदेश दिया
उस अभिमानी पांचाली को
अब द्यूत सभा में लाओ तुम
निर्वस्त्र करो उस दासी को
न देर करो, अब जाओ तुम
पांचाली ने अनुरोध किया
कृप, द्रोण, नरेश, पितामह से
पर मूक बने बैठे थे सब
कपटी दुर्योधन के भय से
दांतों से चीर दबाए रही
अबला ने खूब प्रयास किया
पर कोई जोर चला न जब
थक कर गिरिधर को याद किया
जब आत्मसमर्पण कर बैठी
जगनायक कृष्ण मुरारी को
पल में अंबर अवतार हुआ

प्रभु कृपा मिली पांचाली को

महाभारत में जुए के खेल के दौरान युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर लगा दिया था और दुर्योधन ने मामा शकुनि की मदद से द्रौपदी को जीत लिया। उस समय दुशासन द्रौपदी को बालों से पकड़ कर घसीटते हुए सभा में ले आया। जब द्रौपदी का अपमान हो रहा था तब भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और विदुर जैसे महान लोग गर्दन झुकाये बैठे रहे। देखते ही देखते दुर्योधन के कहने पर दुशासन ने पूरी सभा के सामने द्रौपदी की साड़ी खींचना शुरू कर दिया। द्रौपदी ने अपनी साड़ी का किनारा दांतों तले जोर से दबा लिया और अपनी रक्षा करने की कोशिश करने लगी।

जिस समय द्रौपदी का चीर हरण हो रहा था, श्रीकृष्ण उस समय द्वारिका में अपने महल में भोजन कर रहे थे। जैसे ही दुशासन ने द्रौपदी की साड़ी खींचना शुरू किया, उस समय श्रीकृष्ण के हाथ से रोटी का निवाला मुँह में आधा चला गया था पर उनका हाथ वहीं रुक गया। जब रुक्मणी ने यह देखा तो उन्होंने कहा कि आपने खाना खाना क्यों बंद कर दिया? श्रीकृष्ण ने कहा कि एक भक्त पर गहरा संकट आ पड़ा है। रुक्मणी ने कहा कि फिर आप जा कर उस भक्त की सहायता क्यों नहीं करते? श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा कि अभी वह भक्त मेरे प्रति शरणागत नहीं है , अभी उसे अपनी शक्ति पर भरोसा है।

द्रौपदी ने कुछ देर तो साड़ी के पल्लू को दांतों से दबाये रखा लेकिन जब दुशासन के बल के आगे उसकी एक न चली तो उन्होंने अपने दोनों हाथ उठाकर श्रीकृष्ण को सरेंडर कर दिया। उन्होंने कहा - हे द्वारिकाधीश, मेरी लाज आपके हाथों में है , मेरी रक्षा कीजिये।

ठीक उसी वक्त श्रीकृष्ण ने अम्बारावतार लेकर द्रौपदी की रक्षा की।

इस छोटी सी कहानी से शरणागति का सार पता चलता है। आपने बस, टेªन, हवाई जहाज में कभी न कभी सफर जरूर किया होगा। जब आप ट्रेन या हवाई जहाज में बैठते हैं तो क्या ट्रेन के ड्राईवर या जहाज के पायलट को यह कहते हैं कि यह जहाज हम चलाएंगे? हमारे ऐसा न करने के दो कारण हैं। पहला यह कि हम जानते हैं कि हमें ट्रेन या जहाज चलाने की जानकारी नहीं है और हम उसमें ट्रेंड नहीं हैं। दूसरा यह कि हमें इस बात पर विश्वास है कि पायलट ने विमान चलाने के लिए जरूरी ट्रेनिंग हासिल की हुई है और वह अपना काम हमसे कहीं बेहतर कर सकता है। इसलिए हम बिना किसी संदेह के अपनी जिंदगी किसी और इंसान के हाथों में सौंपकर निश्चिंत होकर यात्रा करते हैं।

कुछ ऐसा ही भगवान और संत के प्रति शरणागति में होना चाहिए। लेकिन जब बात भगवान के प्रति पूर्ण शरणागत होने की आती है, तब हम अपनी बुद्धि को लगाकर बहुत सारे ‘अगर और मगर‘ के भंवर में अपने को फंसा लेते हैं। क्या भगवान सच में मौजूद हैं? क्या भगवान हमारी बात सुनते हैं? इस युग में बुरे के साथ अच्छा और अच्छे के साथ बुरा हो रहा है, यह भगवान का कैसा न्याय है? श्रीराम को सीता जी को नहीं त्यागना चाहिए था। श्रीकृष्ण तो इतनी सारी पत्नियों के

पति थे, भगवान का यह कैसा लक्षण है? ऐसे अनगिनत सवाल हम अपने दिमाग में बुनते रहते हैं। यही सवाल हमें पूर्ण शरणागत होने से रोकते हैं। जब हमें एक ड्राईवर या पायलट पर इतना भरोसा होता है तो हमें भगवान पर यह भरोसा क्यों नहीं होता? क्योंकि भगवान हमारे सामने प्रत्यक्ष नहीं होते इसलिए भगवान के प्रति हमारा विश्वास बड़ा कच्चा होता है। हम भगवान को भोग भी लगाते हैं तो हमें पूरा भरोसा होता है कि भगवान हमारे सामने आकर उस भोग को नहीं खाएंगे। तो भगवान भी आने की जहमत नहीं उठाते। अगर हमारे मन में एक जाट की बेटी करमा (जिसने भगवान की मूर्ति के सामने भोग रखकर एक हफ्ते तक भगवान के भोग ग्रहण करने का इंतजार किया और तब तक खुद भी कुछ नहीं खाया) की तरह सौ फीसदी विश्वास और शरणागति होगी तो भगवान खुद ही आ जायेंगे। भगवान के प्रति विश्वास का यही बोध शरणागति कहलाता है। शरणागति का मतलब यही है कि अपनी पूरी जिंदगी और खुद को भगवान के हवाले कर दिया जाए। फिर वह हमें चाहे जिस भी अवस्था में रखें, हम शिकायत न करें। हमें अपनी जीवन नौका के लिए भगवान से बेहतर नाविक नहीं मिलेगा।

एक छोटे से बच्चे से शरणागति का सबसे अच्छा सबक सीखने को मिलता है। एक छोटा बच्चा खुद से कोई काम नहीं कर सकता। वह खुद अपने बल पर चल-फिर, खा-पी नहीं सकता। उसे तो अपनी पहचान का ही बोध नहीं होता। लेकिन उसे जन्म देने वाली माँ के प्रति वह पूरी तरह से शरणागत होता है। उसे पता है कि भूख लगने पर पेट भरने का एक ही तरीका है कि माँ को रोकर पुकारा जाए। वह इतना भी समर्थ नहीं होता कि माँ को बोल कर आवाज दे सके। उसे तो बस रोना ही आता है तो वह रो देता है। और माँ भी बच्चे के छोटा रहने तक पूरी जिम्मेदारी से उसकी देखभाल और लालन-पोषण करती है। वह जानती है कि उसका बच्चा खुद में असमर्थ है इसलिए वह उसकी हर जरूरत का खुद ही ख्याल रखती है। लेकिन जब बच्चा बड़ा हो जाता है और खुद ही अपनी जरूरतों का ध्यान रखने लगता है तो उसकी माँ उसके कामों में डिस्टर्ब करना बंद कर देती है। वह जानती है कि उसका बेटा अब उसे अपनी जरूरतों के लिए याद नहीं करेगा इसलिए वह भी उसे अपनी समझ के हिसाब से निर्णय लेने की आजादी दे देती है।

ठीक इसी तरह भगवान के प्रति शरणागति की थ्योरी काम करती है। अगर इंसान पूरे तरीके से एक छोटे बच्चे की तरह भगवान के प्रति शरणागत हो जाता है तो भगवान कहते हैं कि उस इंसान का ठेका मैं खुद ही उठाता हूँ।

भगवान कहते हैं -

अनुब्रजाभ्यहं नित्य पूर्ययेत्यऽघ्रिरेणुभिः

मतलब - मैं हमेशा अपने भक्त के पीछे-पीछे चलता हूँ।

भगवद्गीता के आखिर में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि अब मैं तुम्हें सबसे ज्यादा गोपनीय रहस्य बताने वाला हूँ। अर्जुन सावधान होकर सुनता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 18.66)

मतलब - अर्जुन, सभी तरह के धर्मों का त्याग कर दो और मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हारे सभी पापों को माफ कर दूंगा। डरो मत।

यहाँ धर्म का तात्पर्य रिलिजन नहीं है। सभी धर्मों को त्यागने का मतलब है सारे कर्तव्यों से ऊपर भगवान से संबंध को रखना। वर्णाश्रम धर्म (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वगैरह), पिता का धर्म, बेटे का धर्म, पति, पत्नी वगैरह के धर्म, ये सब संसार के धर्म हैं। भगवान अर्जुन को कहते हैं कि तुम सब कुछ मुझे सरेंडर कर दो, बाकी सब मैं अपने आप संभाल लूंगा।

महाभारत के युद्ध से पहले शकुनि ने दुर्योधन को श्रीकृष्ण के पास मदद मांगने के लिए भेजा। दुर्याधन मदद मांगने द्वारिका पहुंचा। भगवान अपने कमरे में सो रहे थे। दुर्योधन उनके सिरहाने आकर बैठ गया और श्रीकृष्ण के जागने का इंतजार करने लगा। इतने में ही अर्जुन भी सहायता मांगने के उद्देश्य से वहां आ पहुंचा और भगवान को प्रणाम करके उनके पैरों के पास बैठ गया।

कुछ देर के बाद श्रीकृष्ण ने अपनी आंखें खोलीं और सामने अर्जुन पर नजर पड़ते ही बोले - "अरे पार्थ, तुम कब आए?"

इतने में ही दुर्योधन बोल पड़ा - "कृष्ण, पहले मैं आया हूँ।"

श्रीकृष्ण तो सब जानते थे लेकिन फिर भी हैरानी जताते हुए बोले - "अरे दुर्योधन तुम भी आए हो? द्वारिका में तुम्हारा स्वागत है।"

और फिर अर्जुन से दोबारा बोले - "कहो अर्जुन कैसे आना हुआ?"

अर्जुन ने कहा - "केशव, मैं आपके पास एक विनती लेकर आया हूँ। अगर आप उसे स्वीकार करेंगे तो मैं धन्य हो जाऊंगा। हम पांडवों की विनती है कि आप हमारी तरफ से युद्ध करें।"

इस पर दुर्योधन अर्जुन की बात बीच में काटते हुए बोला - "कृष्ण, मैं भी आपसे यही सहायता मांगने आया हूँ कि आप कौरवों की तरफ से युद्ध करें।"

श्रीकृष्ण ने थोड़ा रूक कर कहा - "आप दोनों ही मेरे संबंधी हो। इसलिए मैंने निर्णय लिया है कि मैं इस युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊंगा। लेकिन तुम दोनों मुझसे सहायता मांगने आए हो तो मैं तुम दोनों को निराश नहीं लौटाऊंगा। एक तरफ मेरी अथाह नारायणी सेना होगी और दूसरी तरफ मैं अकेला होऊँगा, निहत्था, युद्ध में हथियार नहीं उठाऊंगा। अब तुम दोनों अपनी समझ के अनुसार किसी एक को चुन लो।"

श्रीकृष्ण के इतना कहते ही दुर्योधन ने मौके का फायदा उठाते हुए कहा - "केशव, अर्जुन से पहले मैं आया हूँ इसलिए पहले मैं ही मांगूगा।"

श्रीकृष्ण बोले - "लेकिन मेरी नजर पहले अर्जुन पर पड़ी थी इसलिए पहले मांगने का मौका मैं अर्जुन को देता हूँ।

अर्जुन ने कहा - "हे कृष्ण, मैं आपको अपने सारथि के रूप में मांगता हूँ।"

दुर्योधन ने मन ही मन खुश होते हुए कहा कि मैं आपकी नारायणी सेना को मांगता हूँ।

नारायणी सेना बहुत बड़ी थी। उसमें लाखों सैनिक, घोड़े, हाथी वगैरह थे। उसमें यादव वंश के सभी बड़े-बड़े महारथी और राजा थे जिनको हराना संसार में किसी के लिए भी संभव नहीं था। अर्जुन को यह सब पता था। फिर भी उसने निहत्थे श्रीकृष्ण को मांगने में जरा भी संकोच नहीं दिखाया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि कहाँ लाखों की सेना और कहाँ निहत्थे कृष्ण। उन्होंने तो झट अकेले कृष्ण को मांग लिया। वह जानते थे कि श्रीकृष्ण साक्षात भगवान हैं। उनका साथ होना ही सब ओर से कल्याणकारी है। यही अर्जुन की शरणागति थी। और इस शरणागति का परिणाम महाभारत में क्या हुआ था, यह हम सब जानते हैं।

एक और बात यह है कि भगवान खुद में संपूर्ण हैं लेकिन उन्होंने अर्जुन का सारथि बनना बड़ी खुशी से स्वीकार किया। सारथि के कार्यक्षेत्र में रथ को हांकना, रथी के हर आदेश का पालन करना, घोड़ों की देखभाल करना और उन्हें खाना-पानी देना जैसे काम भी शामिल हैं। लेकिन उन्होंने युद्ध में ये सारे काम किए। शरणागति का यही फायदा है कि भगवान वह सब भी करने को खुशी-खुशी तैयार हो जाते हैं जो एक आम इंसान भी करने से कतराता है।

अपने दुश्मनों को पहचानो

संभल कर सौदा करना इंसानों की बस्ती में
वहां इंसानियत ज़रा महंगी है
और नकाब बड़े सस्ते हैं

अब तक हम यह तो जान चुके हैं कि हमें कभी न खत्म होने वाले आनंद के लिए भगवान को प्राप्त करना पड़ेगा। चाहे वह काम हम इस जन्म में करें या सौ करोड़ जन्मों के बाद करें, रास्ता तो यही है। लेकिन भगवद्प्राप्ति के मार्ग पर बहुत सी बाधाएं हमेशा तैयार खड़ी रहती हैं। भगवद्भक्ति के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने जैसा है, जरा सा बैलेंस बिगड़ा और इंसान नीचे गिर जाता है। इस मार्ग की सबसे बड़ी बाधाएं हैं हमारे विकार जैसे अहंकार, लालच, क्रोध, दूसरों से द्वेष आदि। अनगिनत जन्मों से हमने इन्हीं रिश्तेदारों को अपने से चिपटा रखा है और यही कारण है कि अब तक हम उस आनंद को प्राप्त नहीं कर पाए हैं।

एक अमीर आदमी अपने बेटे की किसी बुरी आदत से बहुत परेशान था। वह जब भी बेटे से आदत छोड़ने को कहते तो एक ही जवाब मिलता कि अभी मैं इतना छोटा हूँ, धीरे-धीरे ये आदत छोड़ दूंगा। पर वह कभी उस आदत को छोड़ने की कोशिश नहीं करता। उन्हीं दिनों एक महात्मा संत गांव में पधारे हुए थे। जब आदमी को उनकी ख्याति के बारे मे पता चला तो वह तुरंत उनके पास पहुंचा और अपनी समस्या बताने लगा।

महात्मा जी ने उसकी बात सुनी और कहा - “ठीक है, आप अपने बेटे को कल सुबह बगीचे में लेकर आइए, वहीं मैं आपको उपाय बताऊंगा।”

अगले दिन सुबह पिता-पुत्र बगीचे में पहुंचे।

महात्मा जी उस बच्चे से बोले - “आओ, हम दोनों बगीचे की सैर करते हैं।”

और वे धीरे-धीरे बगीचे में घूमने लगे।

चलते-चलते महात्मा जी अचानक रूके और उस बच्चे से कहा - “क्या तुम इस छोटे से पौधे का उखाड़ सकते हो?”

“जी हां, इसमें कौन सी बड़ी बात है।” और ऐसा कहते हुए बच्चे ने आसानी से पौधे को उखाड़ दिया।

फिर वे आगे बढ़ गए और थोड़ा आगे जाकर महात्मा जी ने थोड़े बड़े पौधे की तरफ इशारा करते हुए कहा - “क्या तुम इसे भी उखाड़ सकते हो?”

उस बच्चे को तो इस सब में मजा आ रहा था। वह तुरंत पौधा उखाड़ने में लग गया। इस बार उसे थोड़ी मेहनत करनी पड़ी पर काफी कोशिश के बाद उसने इसे भी उखाड़ दिया। वे लोग और आगे बढ़े और कुछ देर बाद महात्मा जी ने एक गुड़हल के पेड़ की तरफ इशारा करते हुए बच्चे से इसे उखाड़ने के लिए कहा। बच्चे ने पेड़ का तना पकड़ा और उसे जोर-जोर से खींचने लगा। पर पेड़ हिलने का नाम ही नहीं ले रहा था।

जब बहुत कोशिश करने के बाद भी पेड़ टस से मस नहीं हुआ तो वह बच्चा बोला - "यह पेड़ तो बहुत मजबूत है, इसे उखाड़ना असंभव है।"

महात्मा जी ने उसे प्यार से समझाते हुए कहा - "बेटा, ठीक ऐसा ही हमारी बुरी आदतों और मन के विकारों के साथ होता है। जब वे एकदम नयी होती हैं तो उन्हें छोड़ना आसान होता है पर जैसे-जैसे वे आदत पुरानी होती जाती है, उन्हें छोड़ना उतना ही मुश्किल होता जाता है।"

बच्चा उनकी शिक्षा को समझ गया था।

पहली बार शराब का सेवन कर रहे व्यक्ति को यह बेहद कड़वी और बेस्वाद वाली लगती है। अगर व्यक्ति इसी अवस्था पर शराब को छोड़ दे तो उसके लिए यह बहुत आसान होता है। लेकिन अगर वह शराब का साथ पकड़े रखे तो धीरे-धीरे शराब के अंदर मौजूद अलकोहल उसके नाड़ी-तंत्र पर कब्जा करने लगता है और उसके शरीर को इसकी आदत पड़ जाती है। उस अवस्था में वह व्यक्ति अगर शराब को छोड़ने की कोशिश करता है तो उसका शरीर इसके खिलाफ रियेक्ट करता है। तब उस व्यक्ति को डॉक्टर और मनोचिकित्सक की सहायता लेनी पड़ती है।

ठीक इसी प्रकार चूंकि हमारे सारे विकार अनंत जन्मों से हमारे मन में दर्ज हैं, इसलिए उनको छोड़ते समय हमारा मन और बुद्धि उसके खिलाफ रियेक्ट करते हैं। ऐसी सिचुएशन में हमें स्पिरिचुअल डॉक्टर यानी संत की जरूरत पड़ती है।

भगवद्गीता के अनुसार -

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.71)

मतलब - जिस इंसान ने सभी वासनाओं का त्याग कर दिया, जिसने मोह को भी त्याग दिया है और जो अंहकार से रहित है, वही इंसान वास्तविक शान्ति और आनंद को प्राप्त कर सकता है।

लेकिन गुड़हल के इस पेड़ को कैसे गिराया जाए? भगवद्प्राप्त संत का संग तो चाहिए ही और साथ में निरंतर भक्ति साधना की भी जाए तो धीरे-धीरे मन साफ होगा। मन का दमन करके, जोर जबरदस्ती से हम उसे नहीं जीत पाएंगे बल्कि लगातार दौड़ते रहने वाले इस मन की दिशा भगवान की भक्ति की तरफ मोड़ कर ही हम इसे काबू में कर सकते हैं। भक्ति के रास्ते पर भगवद्प्राप्ति तभी होती है जब मन सौ फीसदी शुद्ध हो जाता है। पूर्ण रूप से शुद्ध हुए अंतःकरण के बिना भगवान का वह आनंद इंसान को नहीं मिलता जो भक्ति का आखिरी लक्ष्य है। और सौ फीसदी शुद्ध मन का मतलब है कि कोई आपका घोर अपमान भी कर रहा हो तो आपको बुरा न लगे, अपने सबसे बड़े दुश्मन के लिए भी मन में कोई बुरी भावना न रहे, मन में सिर्फ यही ख्याल रहे कि उस दुश्मन के अंदर भी वही भगवान बैठा हुआ है जो हमारे अंदर है, निंदनीय व्यक्ति की भी निंदा न की जाए। यह बहुत ही ऊंची स्थिति है। जो वहां पहुँच गया वह ही भगवान को प्राप्त कर पायेगा।

भगवद्प्राप्ति

कितने नखरे उठाऊँ तेरे गिरिधर

मुझ गरीब के लिए

ये सौदा बड़ा महँगा है

हम यह बात कई बार कर चुके हैं कि जिंदगी की जद्दोजहद में फंसे एक इंसान के पास हर तरह के दुखों से ऊपर उठ कर शाश्वत सुख को पाने का बस एक ही तरीका है कि वह भगवान की भक्ति करके भगवद्प्राप्ति कर ले। पर भगवद्प्राप्ति के बाद क्या होता है यह जानना भी जरूरी है।

जब व्यक्ति लगातार भक्ति साधना करता रहता है तो धीरे-धीरे उस व्यक्ति का मन निर्मल होता जाता है। उसमें वैराग्य की भावना भी अपने आप बढ़ती जाती है और भगवान को पाने की व्याकुलता भी लगातार बढ़ती है। इस तरह धीरे-धीरे उसके अंदर सात्विक भाव जन्म लेना शुरू कर देते हैं और वह सारे संसार को एक नजर से देखना शुरू कर देता है। वह सबके भीतर भगवान को ही बैठा हुआ महसूस करता है इसलिए किसी से कपट या दुर्व्यवहार करना भूल जाता है। जिस दिन वह भक्ति साधना को समय न दे उस दिन उसे अधूरा सा लगने लगता है। भगवान से वह डर या आडंबर का रिश्ता छोड़ कर सिर्फ प्रेम और अपनेपन का रिश्ता स्थापित करने लगता है। इस प्रकार लगातार भक्ति साधना करते रहने से जब उसका अन्तःकरण सौ फीसदी शुद्ध और निर्मल हो जाता है, तब किसी भगवद्प्राप्त गुरु की कृपा से उसका मन प्राकृत से दिव्य हो जाता है और उस स्थिति पर पहुँच कर उसे भगवान की प्राप्ति हो जाती है। इस स्थिति पर उसे जितने आनंद की अनुभूति होती है उसको कोई भगवद्प्राप्त संत ही समझ सकता है, हम जैसे आम इंसान नहीं। उसके सभी विकार, कलेश, दुख, जन्म-मरण का चक्कर वगैरह हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। भगवान की बनाई हुई प्रकृति रुपी माया से वह पार हो जाता है और तब वह हर जगह पर भगवान को प्रत्यक्ष, अपनी आँखों से देख पाता है।

भगवान को प्राप्त कर लेने के बाद वह एक महापुरुष की केटेगरी में आ जाता है। उस शरीर की मौत के बाद उस व्यक्ति को भगवान के लोक में जगह मिल जाती है जहाँ जन्म-मरण, बुढ़ापा या दुख नहीं है। भगवान के लोक के बारे में थोड़ा जानने की कोशिश करते हैं।

वेद के अनुसार सारे संसार का सिर्फ एक चैथाई भाग ही प्राकृत संसार है मतलब पांच तत्वों से बना हुआ संसार। और इस संसार में करोड़ों अरबों ब्रह्मांड हैं। इन ब्रह्मांडों में से एक में हम लोग रह रहे हैं। जो इंसान बहुत से पुण्य और शुभ कार्य करके मृत्यु को प्राप्त होता है वह स्वर्गलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के किसी लोक में बहुत लम्बे समय तक सुख भोगता है। लेकिन जैसा कि हमने पहले भी बात की थी कि पुण्यों का खाता खत्म हो जाने के बाद उस व्यक्ति को फिर से धरती पर किसी योनि में जन्म लेना पड़ता है और जन्म-मरण और दुखों का चक्कर चलता ही रहता है।

वहीं संसार का तीन चैथाई भाग पांच तत्वों की सीमाओं से परे है यानी दिव्य है। इन लोकों में माया या प्रकृति का कोई अस्तित्व नहीं है। जो इंसान भक्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर भगवान को प्राप्त कर लेता है वह इन लोकों में से किसी एक को प्राप्त करता है और फिर कभी नीचे के लोकों में जन्म नहीं लेता। इनमें से कुछ प्रमुख लोक इस प्रकार हैं -

1. गोलोक - दिव्य लोकों में सबसे ऊंचा स्थान गोलोक का है। इसे परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण का लोक माना जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण के सबसे बड़े भक्त जैसे गोपियाँ, ग्वाल वगैरह को स्थान मिलता है। जो इंसान श्रीकृष्ण के बाल या किशोर रूप की और उनकी लीलाओं की भक्ति करता है, वह भगवद्प्राप्ति के बाद गोलोक को प्राप्त करता है। पुराणों में गोलोकधाम का जो वर्णन है, वह इंसान की सोच, विश्वास और कल्पना से परे है। गोलोक में करोड़ों गोप-गोपियाँ, कल्पवृक्ष और कामधेनु गायें हैं। यहाँ सूर्य की जरूरत नहीं है क्योंकि यह लोक भगवान के दिव्य प्रकाश से प्रकाशमान रहता है। गोलोक का कोई बाह्य आधार नहीं है। इसकी लम्बाई चैड़ाई तीन करोड़ योजन है। यहाँ व्याधि (बीमारियां), जरा (बुढ़ापा), मृत्यु, दुख और भय का प्रवेश नहीं है। मन, बुद्धि, अहंकार, सभी विकार और महत तत्व भी यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते। यहाँ का हर कण अलौकिक है और इस लोक की मिट्टी की रज में भी इतना परम आनंद है जो करोड़ों ब्रह्मलोकों में नहीं है।

2. वैकुण्ठ - वैकुण्ठ भी एक महा दिव्य लोक है जो प्रकृति की सारी सीमाओं से परे है। यह भगवान के चतुर्भुज नारायण रूप का लोक माना जाता है। हमारी प्रकृति से मुक्त होने वाला और भगवान नारायण या विष्णु की आराधना करने वाला इंसान भगवद्प्राप्ति के बाद वैकुण्ठ को प्राप्त करता है। वैकुण्ठ का मतलब है कुंठा या दुख से रहित। यहाँ भी मृत्यु, शोक और भय का कोई स्थान नहीं है। शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त चार भुजाओं वाले भगवान नारायण यहाँ अपने करोड़ों पार्षदों के साथ रहते हैं। वैकुण्ठ में भगवान की सेवा भक्तों द्वारा असीम ऐश्वर्य द्वारा की जाती है जबकि गोलोक में उनकी सेवा सहज स्नेह भाव में की जाती है। वैकुण्ठ लोक दरअसल एक लोक नहीं बल्कि ऐसे करोड़ों वैकुण्ठ प्लेनेट दिव्य संसार में स्थित हैं।

3. शिव लोक - दिव्य लोकों में भगवान शिव का लोक भी है जहाँ उन भक्तों को स्थान मिलता है जिन्होंने भगवान् शिव की शुद्ध हृदय से अनन्य भक्ति की होती है। यह लोक भी प्रकृति की सीमाओं से परे है और सिर्फ बहुत ऊंचे स्तर की भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है।

इनके अलावा भगवान के विभिन्न अवतार जैसे श्रीराम, द्वारकाधीश कृष्ण, नरसिंह, वामन वगैरह के अलग-अलग लोक हैं जहाँ उन अवतारों की आराधना और भक्ति करने वाले जीवों को स्थान मिलता है। ये सब लोक भी दिव्य हैं और सदा आनंदमयी हैं।

धर्म वर्सेज रिलिजन

हिंदू बना, मुसलमान बना
काफिर बना, और बंदा
पर खोज न पाया
सांचा, इंसान बनने का

मेरी अब तक की चर्चाओं से कुछ लोगों को यह फीलिंग हो सकती है कि मैं हिन्दू धर्म का समर्थक हूँ और उसी धर्म को प्रमोट करने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन इस चर्चा में मैं कुछ बातें रखना चाहता हूँ। दरअसल हम लोगों में एक बड़ी भ्रान्ति है कि हम लोग धर्म और रिलिजन को पर्यायवाची यानी एक ही मानते हैं। जबकि सच ऐसा नहीं है। भगवान ने गीता में जो भी उपदेश दिया या जो भी बातें मैंने इस किताब में रखी हैं, उनमें हिंदू, मुस्लिम या ईसाई शब्दों का जिक्र ही नहीं है। मैंने अपनी चर्चाओं में सिर्फ एक बात पर सबसे ज्यादा जोर दिया है कि परमात्मा के प्रति हमारे मन में व्याकुलता और शरणागति का भाव होना चाहिए। रिलिजन शब्द तो पिछले दो-ढाई हजार सालों में अलग-अलग सम्प्रदाय बनने के बाद से अस्तित्व में आया है। पुराने समय में धर्म शब्द का प्रयोग कर्तव्य के लिए किया जाता था। पिता का धर्म, बेटे का धर्म, पत्नी का धर्म, शिष्य का धर्म, देश के प्रति धर्म, धरती के प्रति धर्म कुछ ऐसे धर्म थे जिनका पालन करना हर इंसान के लिए जरूरी होता था।

भगवान ने किसी हिन्दू, मुस्लिम या सिख इंसान की शारीरिक या बौद्धिक संरचना में अंतर नहीं किया। वह सिर्फ इंसान बना कर भेजता है। इंसान बनाने वाली उसकी मशीन से सिर्फ इंसान ही बन कर निकलता है, हिंदू, मुसलमान या ईसाई नहीं। मुझे याद है बचपन में हम लोग जब क्रिकेट खेलने जाया करते थे तो आपस में ही सब दोस्त बंटकर दो टीमें बना लेते थे। मैच के दौरान हम लोग विपक्षी की तरह खेलते थे और दूसरी टीम के प्रति पूरी तरह से आक्रामक हो जाया करते थे। दूसरी टीम के खिलाड़ी को आउट करने के लिए हम जी जान लगा देते थे। लेकिन मैच खत्म हो जाने के बाद हम सब जिगरी दोस्तों की तरह घर वापस आ रहे होते थे।

कुछ इसी तरह भगवान ने तो हमें सिर्फ इंसान ही बना कर भेजा था लेकिन अपनी अलग-अलग समझ और बुद्धि के कारण हम लोग सम्प्रदायों की टीमों में बंटते चले गए। हालांकि भगवान की नजर में हम लोग एक ही टीम हैं। इस बात को साबित करने के लिए मैं कुछ फैक्ट सामने रखना चाहता हूँ।

गीता के आखिर में भगवान कहते हैं -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

मतलब कि सब कुछ छोड़ कर तुम मेरी शरण में आ जाओ।

इसी तरह कुरान शरीफ में कहा गया है -

ऐ मुहम्मद, तुम्हारे रब ने जो तुम्हें रास्ता दिखाया है, तुम उसी पर चलो। सिवाय उस एक अल्लाह के कोई दूसरा अल्लाह नहीं है।

गीता में श्रीकृष्ण ने साफ तौर पर कहा है कि सभी जीव मेरी ही संतान हैं। ठीक उसी प्रकार

कुरान भी कहती है -

इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजउन

मतलब - हम सब अल्लाह ही के बंदे हैं और उसी की तरफ लौटने वाले हैं।

मैंने एक चर्चा में जिक्र किया था कि भगवद्प्राप्ति वही कर सकता है जो सब जीवों के भीतर उस एक भगवान को बैठा हुआ देखता है। कुरान भी इसका समर्थन करती है। इस्लाम कहता है कि अगर मोमिन ईमान वाला होना चाहता है तो अपने पड़ोसी का भला कर और अगर मुस्लिम होना चाहता है तो जो कुछ अपने लिए अच्छा समझता है, वही दूसरों के लिए भी अच्छा समझ। इस बारे में बाइबिल भी कहती है कि जो लोग तुम्हारे प्रति द्वेष की भावना रखते हैं, तुम उनसे भी प्रेम करो। जो तुम्हें सताते हैं, तुम उनके लिए भी प्रार्थना करो। सूरज धर्म का पालन करने वाले और अधर्मी, दोनों ही तरह के लोगों को रोशनी देता है।

बाइबिल कहती है -

कोई भी इंसान एक साथ दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। प्रभु और धन, दोनों की सेवा एक साथ नहीं की जा सकती। इसका सीधा मतलब है कि भगवान के प्रति अनन्यता का भाव ही भगवान तक पहुंचाता है। बाइबिल आगे कहती है कि अपने प्राण के लिए यह चिंता न करो कि क्या खाएंगे, क्या पिएंगे। शरीर के लिए यह चिंता मत करो कि क्या पहनेंगे। क्या प्राण भोजन से और शरीर वस्त्र से बढ़कर नहीं है? अगर प्राण और शरीर की रक्षा भगवान करते हैं, तो बाकी भी उनकी मर्जी पर छोड़ दो। यह बात सीधा-सीधा गीता के शरणागति के सिद्धांत से मेल खाती है।

हर रिलिजन या सम्प्रदाय भगवान तक पहुँचने को ही इंसान का आखिरी लक्ष्य बताता है। इसलिए धर्म को मानने वाला सच्चा भक्त तो वही है जो हर इंसान में उसी एक परमेश्वर को देखता हो।

गीता-कुरान दोनों किसी जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र या काल विशेष के लिए नहीं हैं बल्कि सर्वजनहिताय (सभी लोगों के हित के लिए), सार्वभौमिक और सर्वकालिक हैं। दोनों लोक-परलोक सुधारने का रास्ता बताने वाले हैं। परलोक का रास्ता लोक से हो कर ही जाता है। इंसान भगवान की सबसे उत्तम रचना है। भगवान ने इंसान को बुद्धि, विवेक और संवेदनशीलता का अनुपम गुण दिया है। मनुष्य जन्म ही सबसे महत्वपूर्ण है। भगवान की प्राप्ति हो जाए तो अंतिम जन्म भी यही है और न हो तो जन्म चक्रों का कारण भी यही है। इसलिए इंसान को अपना जीवन लक्ष्य और मार्ग बहुत सोच विचार कर चुनना चाहिए। गीता-कुरान दोनों इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। दोनों किसी वाद-विवाद या खंडन-मंडन में नहीं पड़ते। दोनों आस्थावान दिलों में प्रकाश और पवित्रता को भरने वाले हैं।

थोड़ी तकलीफ सह लो

जल तप कर सोना बन कर
भट्टी की गरमी में रम कर
कंचन का यौवन आता है
कुछ और निखर वह जाता है
चाहे हो पपीहे का सावन
चाहे सुख की वर्षा पावन
आषाढ़ की लू से बनती है
खारे सागर से छनती है
आकाश के आभामंडल पर
जो बनना तुझको सूर्य प्रखर
पुरुषार्थ तुझे करना होगा
प्रारब्धों से लड़ना होगा
ऋतुराज के आलिंगन के लिए
पतझड़ से भी गुजरना होगा

मेरा एक दोस्त शराब का बहुत बड़ा फैन है। जिंदगी के बारे में उसकी फिलॉसोफी कहती है कि हम सबको 60-70 साल की छोटी सी जिंदगी मिली है। इस जिंदगी में या तो रोजमर्रा की परेशानियों के बारे में सोच-सोच कर खुद को और परेशान किया जाए या फिर कुछ समय मनोरंजन वगरैह के लिए निकालकर जिंदगी में थोड़ा खुश हो लिया जाए। वह दोस्त कहता है कि अगर हम परिवार और नौकरी से संबंधित सभी जिम्मेदारियों को ईमानदारी से निभा रहे हैं तो अपने आनंद के लिए लिए कुछ समय निकालने में बुराई क्या है।

पुराने समय में एक फिलॉसफर हुए हैं जिनका नाम था चार्वाक। चार्वाक दर्शन को लोकायत दर्शन भी कहा जाता है। लोकायत का मतलब है जो मत या विचार आम लोगों में प्रचलित हो। इस फिलॉसोफी का सार कुछ इस प्रकार है -

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मी भूतस्य देहस्य पुनागमन कुतः।

त्रयोवेदस्य कर्तारौ भण्डधूर्तनिशाचराः।

मतलब कि इंसान जब तक जीवित रहे तब तक सुखपूर्वक जिए। कर्जा लेकर भी घी पिए, मतलब ऐशो-आराम के लिए जो भी उपाय करने पड़ें, उन्हें करे। दूसरों से भी उधार लेकर भौतिक सुख के साधन जुटाने में हिचके नहीं। परलोक, पुनर्जन्म और आत्मा परमात्मा जैसी बातों की परवाह न करे। भला जो शरीर मरने के बाद खत्म हो जाए, उसके पुनर्जन्म का सवाल ही नहीं उठता। जो भी है इस शरीर की सलामती तक ही है और उसके बाद कुछ भी नहीं बचता। वेदों के रचयिता मक्कार और मसखरे हैं, जिन्होंने लोगों को मूर्ख बनाने के लिए आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य जैसी बातों का भ्रम फैलाया हुआ है।

चार्वाक दर्शन नास्तिकवादी है। यह सिद्धांत पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को तो मान्यता देता है लेकिन आकाश तत्व को शून्य मानता है। चार्वाक के अनुसार हमारी चेतना इन्हीं तत्वों से है और मरने पर यह चेतना भी लुप्त हो जाती है। प्रकृति में बनने और नष्ट होने की प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है। न कोई कहीं से आता है, न कोई कहीं जाता है। प्रकृति का सारा खेल यहीं होता रहता है। इसलिए चार्वाक के अनुसार भगवान, स्वर्ग नर्क या वेद शास्त्र की कल्पना में मत जियो। यह संसार और यह जिंदगी ही सच है। इससे परे कुछ भी नहीं है।

मेरे दोस्त और बहुत से लोगों की सोच भी कुछ हद तक चार्वाक की थ्योरी से मेल खाती है। "इतनी परेशानी क्यों मोल लेनी है, मरने के बाद किसने देखा है?" इसी सिद्धांत का तो हम अनुसरण करते हैं। मरने पर हमारा अस्तित्व समाप्त मान लिया जाए, फिर तो चार्वाक और मेरे दोस्त की बात ठीक ही लगती है। एक दिन मरना ही है तो भक्ति, वैराग्य के इतने पापड़ क्यों बेलने हैं? लेकिन चार्वाक से मोहित होने से पहले इस चर्चा को हमारे बचपन की तरफ कुछ देर के लिए मोड़ लिया जाए।

जब हम लोग काफी छोटे थे तो बचपन की स्वाभाविक आदतों के कारण हमारा मन सुबह देर तक सोने, स्कूल न जाने, पढ़ाई न करने, धमाचैकड़ी करने और पौष्टिक खाने से दूर भागने को करता था। जिस दिन हमारा स्कूल किसी अप्रत्याशित घटना के कारण बंद होता था और हमें स्कूल के गेट से वापस भेज दिया जाता था तो ऐसा लगता था जैसे हमें परमानंद की प्राप्ति हो गयी। लेकिन फिर भी हमारे माता-पिता और टीचर्स ने हमारी इच्छा न होने के बावजूद हमें स्कूल भी भेजा, हमें डांट डपट कर पढ़ाया भी, अनुशासन भी सिखाया, स्वास्थ्य का महत्व भी बताया और हमें इंसान बना दिया। वे लोग जानते थे कि हमारे लिए सबसे बेहतर क्या है। और धीरे-धीरे बड़े होने पर हमें यह समझ आ गया कि बचपन हमारी सारी जिंदगी नहीं थी। बचपन के बाद भी एक जिंदगी होती है जिसके लिए हमें बचपन के दौरान तैयारी करनी पड़ती है। अगर उस समय हमने अपने मन का किया होता तो बचपन के बाद का पूरा जीवन संघर्ष से भरा होता।

कुछ ऐसा ही चार्वाक के सिद्धांत पर भी लागू होता है। वेद में जितनी भी बातें बतायी गयी हैं, अगर हम उस पर विश्वास करेंगे तो चार्वाक जैसे सारे सारे सिद्धांत धरे रह जाएंगे। उपनिषदों, पुराणों और संतों के भाष्यों में एक ही बात को बार-बार बताया गया है कि हमारा सच शरीर नहीं आत्मा है जो कभी नष्ट होता ही नहीं। इसलिए चार्वाक की थ्योरी भी हम पर लागू भी नहीं होती।

भगवद्गीता कहती है -

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.16)

मतलब - शरीर असत्य है और आत्मा सत्य है। शरीर का कोई परमानेंट अस्तित्व नहीं है लेकिन आत्मा में कभी बदलाव नहीं होता।

यह हमारे ऊपर है कि हम चार्वाक की बात को सच मानते हैं या वेद की बात को। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि बचपन में भी हमने चार्वाक की थ्योरी को अपनाना चाहा था पर हमारे पेरेंट्स ने वेद की तरह हमें सही रास्ता दिखाया था। इसलिए यह निर्णय हमें लेना है कि हमें 60-70 सालों का सुख चाहिए और फिर मरने के बाद करोड़ों जन्मों तक दुख ही दुख या फिर अभी कुछ सालों का कष्ट और मेहनत करके हमेशा रहने वाला सुख और आनंद प्राप्त कर लिया जाए।

वेद भी कहता है -

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिप्रतिहता या यावत्क्षयो नायुषः।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्

प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

(वैराग्य शतक 86)

मतलब - बुद्धिमान व्यक्ति को समय रहते अपनी मुक्ति के लिए कोशिश करनी चाहिए। उसके लिए कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाना चाहिए। जब तक इंसान का शरीर स्वस्थ हो, बुढ़ापा दूर हो

और याद्दाश्त कमजोर न हुई हो, तभी इंसान को मुक्ति के लिए हर संभव कोशिश कर लेनी चाहिए। क्योंकि जब घर में आग लग ही चुकी हो तो उस समय पानी के लिए कुआं खोदने का क्या फायदा।

वेद आगे कहता है -

चेतोहरायुवतयः सुहृदोऽनुकूलाः

सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।

गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति॥

मतलब - आपके पास बेहद सुंदर और युवा स्त्री हो सकती है, आपके अनुकूल चलने वाले अच्छे दोस्त हो सकते हैं, आपके साथ ईमानदारी रखने वाले रिश्तेदार हो सकते हैं और आपके साथ मधुरता के साथ बोलने वाले नौकर हो सकते हैं, लेकिन जब मौत हो जायेगी तो आपके पास इनमें से कुछ भी नहीं बचेगा।

इसलिए कठोपनिषद कहता है कि -

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

मतलब - हे मनुष्यों, उठो, जागो और किसी भगवद्प्राप्त संत के पास जाओ और उनसे सत्य का ज्ञान ग्रहण करो।

इस दुनिया का एक कड़वा सच यह है कि यहाँ हर कोई स्वार्थी है। जिस कंपनी में आप काम करते हैं उसने इस स्वार्थ के लिए आपको नौकरी दी है की उसका रेवेन्यू कई गुना बढ़े। वहीं आप इसलिए नौकरी करते हैं कि आप को जीवन यापन के लिए पैसा मिले। माता-पिता को बच्चों से इस स्वार्थ की उम्मीद रहती है कि वे उनकी सेवा करें। बच्चों का बचपन में यह स्वार्थ रहता है कि माँ-बाप उनकी देखभाल करें और जवानी में यह कि उन्हें जेब खर्च मिले और उनकी शिक्षा और दूसरी जरूरतों का ख्याल रखा जाये। हम किसी को कुछ दान में भी देते हैं तो दान लेने वाले को हमसे उस पैसे की प्राप्ति का स्वार्थ होता है और हमें यह स्वार्थ कि इस परमार्थ का फल हमें मरने के बाद मिलेगा। स्वार्थ सिद्धि के बिना तो यह संसार ही खत्म हो चुका होता। न परिवार, न समाज और न ही राष्ट्र संगठित रहते अगर एक दूसरे से स्वार्थ पूर्ति की उम्मीद न रहती। मैं नकारात्मक इंसान नहीं हूँ पर यह सच्चाई है कि भगवान, संत और प्रकृति के बिना इस दुनिया में कोई नहीं जो बिना स्वार्थ के कोई कर्म कर सके।

मैं यह नहीं कहता कि एक माँ का अपने नवजात बच्चे के लिए प्यार या पिता का स्नेह पूरी तरह से स्वार्थ से भरा है। लेकिन उनके प्यार को सौ फीसदी शुद्ध मानने से पहले यह तो जान लिया जाए कि प्यार का असली मतलब क्या है। प्रेम का असली मतलब है जिससे आप प्रेम करते हो सिर्फ उसके सुख की कामना करना, अपने सुख के बारे में सोचना भी नहीं। और जैसा प्यार संसार में देखने को मिलता है उसमें सामने वाले के सुख की कामना अगर हो भी तो अपने सुख की उम्मीद भी जरूर है। यह प्रेम नहीं, सौदा है।

जिंदगी तो आप भी जी रहे हैं, मैं भी और बाकी सब भी। गलियों में कचरे के ढेर में अपना खाना ढूंढती गाय भी जी ही रही है और उसके ऊपर लगातार भौंक रहा कुत्ता भी अपनी जिंदगी जी ही रहा है। अगर सिर्फ जीना ही मकसद है तो कोई परेशानी नहीं है, आप मेरी किताब को फाड़ कर फेंक दीजिये। अगर चार्वाक की थ्योरी की तरह हमारा होना सिर्फ इसी जिन्दगी तक ही सीमित होता तो मैं खुद ही अपनी किताब को कूड़े में फेंक चुका होता या उसे लिखता ही नहीं। पर मुसीबत यह है कि हमारा सफर तो इस जिंदगी के बाद भी चलता रहेगा। अब या तो हम उस सफर को आगे बढ़ने से रोक लें जो कि हमारे बस में नहीं है। तो बस एक चीज जो हमारे पास बचती है और जो हमारे बस में भी है वो है कि इस लम्बे सफर को परमानेंट रूप से बेहतर बनाने के तरीके खोजे जाएं और उन्हें अपनाया जाए। और तरीका एक ही है जो हम पूरी किताब में पढ़ते आये हैं यानी भगवान की दीन भाव से भक्ति और उनसे विनम्रतापूर्वक यह मांगना कि वह हमें अपने अनंत आनंद में से कुछ हमें दे दें जिससे अनंत काल के लिए हमें संसार के दुखों से मुक्ति मिल जाये।

शुरुआत में भक्ति साधना में बड़ा खराब लगेगा, मन इधर उधर भागेगा और लगेगा कि क्या फालतू काम है। लेकिन अगर उस अवस्था को हम पार कर गए तो हमारा मन खुद ही लगने लगेगा और फिर लक्ष्य बहुत दूर नहीं रह जायेगा। उम्मीद है कि मैं और आप, दोनों इस लक्ष्य को पाने की कोशिश करेंगे।

चलता हूँ...